सर्वधर्म समभाव

और

इस्लाम धर्म

लेखक

मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ

ज़ैनुल-आबिदीन मंसूरी

डॉ॰ सैयद शाहिद अली

मुहम्मद इक़बाल मुल्ला

विषय-सूची

क्या?	कहाँ?
	पृष्ठ
भूमिका	5
1. सर्वधर्म समभाव का दृष्टिकोण	7
—मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ	
2. सर्वधर्म समभाव—एक निरीक्षण	13
—मुहम्मद ज़ैनुल-आबिदीन मंसूरी	
3. धर्म : एक या अनेक	26
—डॉ॰ सैयद शाहिद अली	
4. सर्वधर्म समभाव और इस्लाम धर्म	39
—मुहम्मद इक़बाल मुल्ला	

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

'अल्लाह कृपाशील और दयावान के नाम से'

भूमिका

मानव का इहलौकिक जीवन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। यही वह जीवन है जो मनुष्य के नारकीय या स्वर्गीय जीवन का निर्णय करता है। तुलसीदास जी ने क्या अच्छा कहा है—

नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही।।
नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी। ग्यान विराग भगति सुभ देनी।।

अर्थात् मानव-जीवन अत्यन्त महत्वपूर्ण जीवन है। अब प्रश्न यह उठता है कि यह जीवन क्या ऐसे-तैसे किसी भी प्रकार से बिता देने के लिए मिला है या एक निश्चित विधि से जीवन बिताकर परम लक्ष्य को पा लेने के लिए मिला है। सत्यपरायण और धर्मपरायण लोग निश्चय ही यही उत्तर देंगे कि 'सत्य' धर्म का अनुपालन करते हुए ईश्वर की प्रसन्नता पा लेने के लिए मिला है। किन्तु अब पुनः प्रश्न हम सबके समक्ष यह खड़ा होता है कि किस मार्ग, किस विधि या किस धर्म का पालन करते हुए हम अपने प्रभु को प्रसन्न करके अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रश्न के हल हेतु जब हम धर्म के लोक में दृष्टिपात करते हैं तो संसार में धर्मों की एक भीड़ दिखाई देती है। कुछ लोगों का विचार है कि सभी धर्म सत्य और एक समान हैं चाहे उनमें विरोधाभास या टकराव ही क्यों न पाया जाता हो। कोई भी व्यक्ति किसी भी धर्म को अपनाकर मानवीय जीवन-लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। किन्तु कुछ विद्वानों का मानना है कि इहलोक और परलोक, ईश्वर और मनुष्य दो बिन्दुओं की भाँति हैं और दो बिन्दुओं से केवल एक ही सीधी रेखा खींची जा सकती है। अतः मनुष्य का ईश्वर तक पहुँचने का एक ही मार्ग हो सकता है, अर्थात् एक ही धर्म सत्य हो सकता है। फिर उनका तर्क है कि मनुष्य की बाह्य और आन्तरिक संरचना एक समान है। सभी का शारीरिक धर्म एक समान है। सभी मनुष्य एक समान रूप से, एक समान अंगों से खाते-पीते, श्वास लेते और अन्य गुणधर्म अपनाते हैं, तो फिर 'धर्म', जो आत्मा का गुणधर्म है, कैसे विभिन्न हो सकते हैं, जबकि सभी की आत्मा का स्वरूप भी एक समान है।

यह दूसरे प्रकार के विद्वानों की सोच सत्य भी है। यदि हम गम्भीर और स्थिरचित्त होकर विचार करें तो हमारा हृदय अवश्य बोल उठेगा कि जब मनुष्य प्राकृतिक एवं रचनात्मक दृष्टि से एक समान है तो उसका 'धर्म' भी एक ही समान हो सकता है और वही मनुष्य को लक्ष्य तक पहुँचा सकता है। विचारक विद्वान हमेशा इस विषय पर विचार करते रहते हैं और खोजीजन खोज भी लेते हैं।

इस पुस्तिका में कुछ ऐसे ही विद्वानों के लेखों को संग्रहित किया गया है। आशा है कि पाठकों को सत्य की खोज हेतु प्रेरित अवश्य करेंगे। लेखों में वर्णित तथ्य, तर्क और मत लेखकों के अपने हैं। उन्होंने जिस चीज़ को सबके लिए कल्याणकारी और हितकर समझा उसे उन्होंने लोगों के सम्मुख प्रस्तुत किया ताकि वे उसपर विचार कर सकें।

इस पुस्तक के प्रकाशन का मुख्य लक्ष्य 'सत्य' की खोज की दिशा में लोगों को उत्प्रेरित करना मात्र है। इसके प्रकाशन से किसी भी धर्म का उपहास या अपमान करना कदापि लक्ष्य नहीं, बल्कि अपने विचारों, धारणाओं और परम्पराओं पर लोगों को पुनर्विचार करने की दिशा में उभारना मात्र है। मनुष्य को अपने जीवन के प्रति अवश्यतः गम्भीर होना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि लक्ष्य की नैया छोड़कर व्यक्ति कुलक्ष्य की नैया पर सवार हो, कहीं पारसमणि को छोड़कर वह चमकते कन्च के टुकड़ों को हाथ में लिए हुए गर्व ना कर रहा हो!

ईश्वर से प्रार्थना है कि सभी मनुष्यों को सत्य और वास्तविक धर्म को पाने और अपनाने का मार्ग प्रशस्त करे। (आमीन)

—**प्रकाशक**

सर्वधर्म समभाव का दृष्टिकोण

✍ मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ

'लोगों में परस्पर एकता और मेल-मिलाप हो' इस इच्छा की अभिव्यक्ति अनेक महापुरुषों की ओर से हुई है और यह ऐसी बात है जिसके समझने में जनसामान्य को भी कोई कठिनाई नहीं होती। सभी लोग इस भावना को आदर की दृष्टि से देखते हैं। मनुष्य के व्यक्तित्व और उसके जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण और मूल्यवान हिस्सा वह है जिसकी अभिव्यक्ति आस्था और धर्म (अक़ीदा और धर्म) के नाम से की जाती है। यह वास्तव में जीवन की उपलब्धि है। यही जीवन का सौन्दर्य और वह लालित्य है जो मनुष्य को जान से बढ़कर प्यारा है। संवेदनशील और चिन्तनशील मन में यह इच्छा भी उभरती है कि सामान्य दृष्टि से ही नहीं, बल्कि आस्था और धर्म के स्तर पर भी मनुष्यों में परस्पर एकता और आत्मीयता पैदा हो। अगर इस स्तर पर लोग एकजुट न हो सकें तो एकता और मेल-मिलाप की दूसरी चीज़ें कुछ अधिक उत्साहवर्द्धक और सन्तोषजनक नहीं हो सकती हैं। जब एकता की अभिलाषा हो तो पूर्ण एकता की अभिलाषा हो। यह तो सदाकांक्षा (नेक ख़्वाहिश) के साथ एक तरह का अन्याय होगा कि हम न केवल यह कि निम्नकोटि की चीज़ों पर सन्तोष कर लें; बल्कि इस सन्तुष्टि को ही श्रेष्ठ समझने लग जाएँ।

आस्था और धर्म के स्तर पर लोगों के बीच मेल-मिलाप और एकत्व पैदा करने की इच्छा एक उच्च, पवित्रतम और नैसर्गिक इच्छा है।

आस्था और धर्म के स्तर पर लोगों के बीच मेल-मिलाप और एकता पैदा करने का केवल एक ही उपाय हो सकता है और वह यह कि उस सत्य की खोज की जाए, जो सही अर्थों में सत्य है और फिर यह सदिच्छा की जाए कि लोग उस सत्य को स्वीकार करें और उसे छोड़कर किसी ग़लत चीज़ को न अपनाएँ। इस तरह यदि मानवजाति की अधिसंख्या में आस्था और धर्म के स्तर पर एकता पैदा हो जाती है तो अनिवार्यतः इसके सुखद परिणाम भी

सामने आ सकते हैं; क्योंकि मानव-जीवन की सर्वशक्तिमान और सर्वाधिक बलशाली भावना 'आस्था और धर्म' की भावना होती है। धर्म जीवन की आत्मा है। यह भावना अगर संयुक्त और सर्वमान्य भावना बन सके तो यह कहना सही होगा कि जीवन के उच्च स्तर पर एकता स्थापित करने में हमें सफलता प्राप्त हो गई है। इस एकता की नींव सुदृढ़ और अत्यन्त गहरी होगी।

लेकिन धर्म के स्तर पर एकता पैदा करनेवालों में एक बड़ा गरोह इस तरह का रहा है, जिसने इसके लिए सही रास्ता अपनाने के बजाय दूसरा रास्ता अपनाया। वह सत्य की खोज में अपने ज्ञान और बुद्धि-विवेक से काम लेकर जन-सामान्य की मदद तो क्या करता, उसने सत्य की खोज के मार्ग ही को अवरुद्ध करने में अपनी सारी बौद्धिक क्षमता और शैक्षणिक योग्यता लगा दी। उसने सारे ही प्रचलित धर्मों को सत्य ठहराकर यह घोषणा कर डाली कि वस्तुतः हम जातीय और राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं, धर्म के स्तर पर भी एक हैं। केवल हमें भ्रम और ग़लतफ़हमी है कि हमारे धर्म अलग-अलग और परस्पर विरोधी हैं और धर्मों की दृष्टि से हम एक-दूसरे को नहीं जानते। सभी धर्म एक हैं और एक ही गंतव्य की ओर हमारा मार्गदर्शन करते हैं। सब में एक ही सच्चाई है। केवल सोच और व्याख्या का अन्तर है, जिसपर ध्यान देने की ज़रूरत नहीं है।

इस सम्बन्ध में जब हम ऐतिहासिक दृष्टि से देखते और विश्लेषण करते हैं तो बहुत-सी कोशिशें हमारे सामने आती हैं, जिनसे सर्वधर्म समभाव के उपरोक्त दृष्टिकोण को बल मिलता आया है।

अशोक के बारे में यह दावा किया जाता है कि वह सर्वधर्म समभाव के दृष्टिकोण का प्रबल समर्थक था। शिला-लेखों में उसकी अंकित करवाई गई इबारतों से यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि वह विभिन्न धर्मों और उनके विभिन्न रूपों को आदर की दृष्टि से देखता था। हालाँकि वह धर्म की मूल चेतना को सर्वाधिक महत्त्व देता था। वह अपने धर्म का आदर-सम्मान करता था, लेकिन दूसरे धर्मों को भी बुरा नहीं कहता था। उसकी सोच का आधार यह सिद्धान्त था कि जो व्यक्ति दूसरे को ग़लत ठहराता है वह स्वयं अपने धर्म को आघात पहुँचाता है।

डॉ॰ राधाकृष्णन की दृष्टि में शान्ति की स्थापना और परस्पर मिल-जुलकर रहने के लिए यह दृष्टिकोण बहुत महत्त्वपूर्ण और आवश्यक है। डॉक्टर साहब के विचार में मानव-जाति के लम्बे जीवन के लिए आवश्यक है कि लोगों में पारस्परिक सहयोग हो और एक की स्वतन्त्रता दूसरे की स्वतन्त्रता में बाधक न बने। इसी तरह धर्म के बारे में उदारता आवश्यक है। धर्मों का कोई भविष्य नहीं, यदि वे एक-दूसरे को स्वीकार नहीं करते। यह युग की आत्मा और समय की आवश्यकता है। हर बड़े धर्म ने मानव-चरित्र को उभारा है। यह कहना सही नहीं होगा कि किसी विशेष धर्म ने ही चरित्रवान लोग पैदा किए हैं। इस तरह डॉक्टर राधाकृष्णन ने सर्वधर्म समभाव का ज़ोरदार समर्थन किया है।

सर्वधर्म समभाव के समर्थक अपने दृष्टिकोण के समर्थन में वेद, गीता और बहुत-सी धार्मिक पुस्तकों और हस्तियों को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे अथर्ववेद का वह मंत्र पढ़ते हैं, जिसका भावार्थ है—

"एक ही ज्योति है, जो विभिन्न रूपों में प्रकट होती है।"

वे गीता का यह श्लोक भी प्रस्तुत करते हैं—

"श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।।"

(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय-3, लोक-35)

अर्थात् "अच्छी प्रकार आचरण में लाए हुए दूसरे के धर्म से गुणरहित भी अपना धर्म अति उत्तम है। अपने धर्म में तो मरना भी कल्याणकारक है और दूसरे का धर्म भय को देनेवाला है।"[1]

संसार में विभिन्न जातियाँ पाई जाती हैं और उनके अलग-अलग धर्म हैं। इस बहुतायत में एकत्व की स्थापना के लिए सर्वधर्म समभाव के दृष्टिकोण को एक सफल नुस्ख़ा ठहराया गया।

'ब्रह्म-समाज' के संस्थापक राजा राममोहन राय भी इस सिलसिले की एक कड़ी माने जाते हैं। 1866 ई॰ में देवेन्द्र ने एक अलग समाज बनाया। उसका नाम 'भारतीय ब्रह्म समाज' रखा। हिन्दू, बौद्ध, इस्लाम इत्यादि के

1. गीता प्रेस, गोरखपुर

धर्मग्रन्थों में से चुने हुए उद्धरणों को संकलित करके एक पुस्तक का रूप दिया गया।

सर्वधर्म समभाव के समर्थकों में से रामकृष्ण परमहंस भी थे। उन्होंने न तो ग्रन्थ को नकारा और न ही शास्त्र का खंडन किया और न ही किसी कर्मकांड का विरोध किया। परमहंस के कारण पुराने विचारों के समर्थक और पुरानी रीति-रिवाजों के लोगों को बड़ा सहारा प्राप्त हुआ।

हमारे दौर का एक महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व गाँधी जी का है। उन्होंने भी अपना वज़न सर्वधर्म समभाव के पलड़े में डाला। उनका कहना था--

> "किसी व्यक्ति के लिए यह सही नहीं होगा कि वह यह कहे कि उसका धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है और संसार को उसी को अपनाना चाहिए।"

गाँधी जी अपने दृष्टिकोण के औचित्य को इस प्रकार सही ठहराते हुए कहते हैं कि--

> 'जिस तरह हम ख़ुदा को देख नहीं पाते उसी तरह हम उस पूर्ण धर्म को भी नहीं देख पाते। हमारे द्वारा जो धर्म भी कल्पित और रचित होगा, वह पूरे तौर पर पूर्ण नहीं हो सकता। उसमें कमी और त्रुटि अनिवार्यतः रहेगी। इस रहस्य को जिस किसी ने समझ लिया, वह अपने धर्म की कमी और त्रुटि को भी स्वीकार करेगा।'

गाँधी जी के सिद्धान्त के अनुसार, मनुष्य के लिए सही कार्य-प्रणाली भी यही है कि वह अपने धर्म को सब धर्मों से श्रेष्ठ भी न कहे, लेकिन उसका त्याग भी न करे। इसके साथ ही, अपने धर्म की त्रुटियों की ओर से अपनी आँखें बन्द भी न करे।

इस विश्लेषण से इस बात का ख़ूब अच्छी तरह अनुमान होता है कि सर्वधर्म समभाव के समर्थकों के यहाँ चिन्तन-मनन का बहुत अभाव पाया जाता है। चिन्तन और शोध के बजाय उनके यहाँ जो चीज़ प्रभावी नज़र आती है वह केवल इच्छावाद या इच्छा-भक्ति है। चाहे वह एकता की इच्छा हो या उसके पीछे यह भावना काम कर रही हो कि इस दृष्टिकोण के द्वारा वे स्वयं जिस मार्ग पर चल रहे हैं उसकी पुष्टि भी हो जाती है। इस दृष्टिकोण के समर्थक धर्म का सही अर्थ भी नहीं समझते। वे यह नहीं जानते कि धर्म

वस्तुतः ईश्वर की इच्छा मालूम करने और उसपर चलने का नाम है। धर्म अपने व्यक्तिगत रुझानों और अभिरुचियों के अनुसरण का नाम नहीं है। सत्यनिष्ठता और ईश-भक्ति की अपेक्षा तो यह है कि मनुष्य इस तथ्य के लिए बेचैन हो कि सत्य क्या है और ईश्वर हमसे क्या चाहता है? ईश्वर के बताए हुए सत्य-मार्ग को छोड़कर विभिन्न मार्गों पर भटकने और प्रत्येक मार्ग को सत्य और ठीक ठहराने से स्वयं धर्म विकृत और अनुपयोगी होकर रह जाता है। जब आदमी को सिरे से इसकी चिन्ता ही न हो कि ईश्वर उससे क्या चाहता है और उसके जीवन की सही कार्य-प्रणाली क्या है और वह अपनी दशा पर सन्तुष्ट रहे तो उसके इस रवैए को ईश्वर (ख़ुदा) के साथ वफ़ादारी के रूप में किस प्रकार अभिव्यक्त किया जा सकता है।

सर्वधर्म समभाव के समर्थक क्या यह नहीं जानते कि विभिन्न धर्म केवल गिनती की दृष्टि से ही अलग-अलग नहीं हैं, बल्कि उनमें परस्पर ऐसे अनगिनत मूलभूत विरोधी तथ्य भी पाए जाते हैं, जिनमें सामंजस्य और एकत्व स्थापित करना सम्भव नहीं। ऐसी स्थिति में उन सबको एक समान हैसियत देना और उन सबको सही समझना क्या कोई उचित नीति हो सकती है? इसका तो अर्थ यह होगा कि धर्म का बुद्धि और विवेक से कोई सम्बन्ध ही नहीं है। जिस चीज़ का समर्थन आदमी का अन्तःकरण और उसकी बुद्धि न करे, क्या आदमी अपने पूरे अस्तित्व और अपनी पूरी शक्ति से उसका अनुसरण कर सकता है? हरगिज़ नहीं, आदमी की बुद्धि और उसका अन्तःकरण भी उसके अस्तित्व का ही अंग है और अत्यन्त शक्तिशाली अंग है। फिर क्या यह तथ्य धर्म-विमुख लोगों को धर्म के निकट लाने का साधन हो सकता है? यह बात भी सोचने की है। सच्चाई यह है कि इससे धर्म ही उनकी दृष्टि में हास्यास्पद बन कर रह जाएगा और वे यह कहने में सत्य पर होंगे कि हम से किसी अनुचित चीज़ को स्वीकार करने की माँग मूर्खतापूर्ण ही नहीं, अनैतिकतापूर्ण भी है।

उदारता का मतलब यह नहीं होता कि जिस चीज़ को हम सही न समझते हों, उसे भी सही ठहराने लगें और जिस चीज़ को हम सर्वोत्तम पाते हों, उसे सर्वोत्तम और श्रेष्ठ न कहें। इस तरह से तो हम शोध और तलाश की भावना को कुचल देने के अपराधी होंगे। सच्ची उदारता, सहिष्णुता और न्यायप्रियता असल में यह है कि हम हर एक का यह मौलिक अधिकार

स्वीकार करें कि वह जिस चीज़ को सही समझे उसे सही कहे और उसको अपनाए; शर्त यह है कि उससे दूसरों के अधिकारों का हनन न होता हो।

जिन लोगों की खोज यह है कि सारे ही धर्म, जो आज संसार में पाए जाते हैं, एक ही हैं; अन्तर केवल पारिभाषिक शब्दों का है, उनका अध्ययन अत्यन्त सतही और उथला है। गम्भीर अध्ययन से आदमी इस निष्कर्ष पर तो पहुँच सकता है कि सत्य-धर्म हमेशा एक ही रहा है; क्योंकि उसे एक होना ही चाहिए। सर्वधर्म समभाव की नहीं, धर्म के एकत्व की बात उचित हो सकती है। उस एक सत्य-धर्म की खोज आदमी की सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी है। बिगाड़ और विकृति के कारण एक ही वस्तु के विभिन्न रूप हो जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में उस मौलिक वस्तु की खोज होनी चाहिए, न कि खोज और अनुसंधान से मुँह मोड़कर किसी स्वार्थ के कारण हम हर एक की पुष्टि करने में अपनी पूरी शक्ति और ऊर्जा ख़र्च कर दें। खोज और अनुसंधान के मार्ग में क़ुरआन हमारा मार्गदर्शन कर सकता है; शर्त यह है कि हम गम्भीरतापूर्वक समस्या को समझने और सुलझाने का प्रयास करें। खोज और अनुसंधान के परिणामस्वरूप यदि हमने 'सत्य' अर्थात् 'सत्यधर्म' को पा लिया, तो वही मानव-जाति का एकमात्र 'मूल धर्म' हो सकता है और वही सबके लिए स्वीकार्य हो सकता है और उसी के द्वारा आस्था और धर्म के स्तर पर मेल-मिलाप और एकता की स्थापना हो सकती है, जो चिरकालिक भी होगी।

OO

सर्वधर्म समभाव–एक निरीक्षण

❖ मुहम्मद ज़ैनुल-आबिदीन मंसूरी

विचारों की विविधता, विचारधाराओं की भिन्नता और मान्यताओं में विभेद इनसानी समाज में हमेशा पाया जाता रहा है। पृथ्वी पर केवल इनसान ही एक ऐसा प्राणी है जिसे सोचने-समझने, चिन्तन-मनन करके नीतियाँ अपनाने, तथा आचार-व्यवहार में सही या ग़लत निर्णय लेने की क्षमता व शक्ति और अधिकार ईश्वर ने प्रदान किया है। इस सम्बन्ध में इनसान द्वारा नकारात्मक (Negative) आचरण की नीति छोड़कर सकारात्मक (Positive) नीति धारण करने में सहायता, मार्गदर्शन व सहयोग के लिए ईश्वर ने दो प्रकार के प्रावधान किए। एक : इनसान की अन्तरात्मा में भलाई या बुराई, नेकी या बदी, न्याय या अन्याय और सत्य या असत्य में से सकारात्मक पहलुओं को अपनाने की इच्छा-शक्ति तथा नकारात्मक पहलुओं को छोड़ देने की इच्छा-शक्ति पैदा कर दी। दो : ईश-ग्रन्थों व ईशदूतों के माध्यम से इनसानों को सत्य-मार्ग पर चलने, सत्य-नीति अपनाने तथा असत्य मार्ग को छोड़ देने की शिक्षा, प्रेरणा, आदेश-निर्देश और तत्संबंधित ज्ञान व मार्गदर्शन प्रदान करने का प्रबन्ध किया। इस तरह ईश्वर ने मनुष्यों के लिए उनके जीवनकाल को परीक्षाकाल, दुनिया को एक विशाल परीक्षा-स्थल और जीवन को परीक्षा बना दिया कि वे अपनी ईश-प्रदत्त 'स्वतन्त्र चयन-शक्ति' तथा अपनी विवेकशीलता को सकारात्मक दिशा में कार्यान्वित करके सत्य-पथ व न्याय-मार्ग पर चलते हैं या मूल मानवीय मूल्यों, मौलिक मानव-गुणों तथा ईश्वरीय शिक्षाओं व आदेशों की अवहेलना व तिरस्कार करके असत्य, अत्याचार, अन्याय और दुराचार की राह पर चलकर, मात्र लोभ-लालच तथा भौतिकता के पुजारी बने रहकर जीवन बिताते हैं। फिर ईश्वर ने इनसानों पर (ईश-ग्रन्थों तथा ईशदूतों के माध्यम से) यह बात भी स्पष्ट कर दी कि इस परीक्षा में सफल होनेवालों के लिए शुभ परिणाम है और वह यह कि इस जीवन में सर्वांगीण सुख-शान्ति और पारलौकिक जीवन में स्वर्ग की प्राप्ति और इस परीक्षा में असफल होनेवालों के

लिए अशुभ परिणाम है और वह यह कि इस जीवन में दुख, समस्याएँ, अशांति व त्रासदियाँ तथा पारलौकिक जीवन में नरक की यातनाएँ।

धर्म की भूमिका, सत्य-पथ को अपनाने में मानवजाति की सहायता करने की है। साथ ही धर्म स्वयं में पूर्णरूपेण सत्य पथ भी है। लेकिन मानवजाति की यह एक घोर व गम्भीर विडम्बना रही है कि अधिकतर इनसानों की नासमझी या ईश्वर के प्रति उनकी विमुखता, संवेदनहीनता, कृतघ्नता या उदण्डता ने धर्म की इन दोनों हैसियतों को क्षतिग्रस्त कर दिया और अपनी सहायता व पथ-प्रदर्शन में धर्म को उसकी यथार्थ व सक्रिय भूमिका निभाने का यथोचित अवसर न दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि समाज और पूरा विश्व अन्याय, अत्याचार, अशांति, भ्रष्टाचार और शोषण व अपराध से भर गया। इस त्रासदी तथा धर्म के इस पतन और इसकी अप्रभावकारिता एवं निष्क्रियता के पीछे जो अनेक कारण एवं कारक हैं उनमें एक प्रमुख और बुनियादी कारक है : सत्य-धर्म से इनसानों द्वारा टूट-टूटकर बिखर जाना और 'अनेक धर्मों' में बंटकर कमज़ोर व प्रभावहीन हो जाना।

धर्म—एक या अनेक

मनुष्य अपने जीवन में चारों ओर फैली हुई बहुत सारी अनेकताओं एवं विषमताओं का अवलोकन तथा अनुभव करता है। बहुत सारे मामलों में वह 'अनेकता में एकता' (Unity in Diversity) तथा 'विषमताओं में सामंजस्य' की नीति भी अपना लेता है। लेकिन उसकी बुद्धि इस बात को कभी स्वीकार नहीं करती कि 'सत्य' में भी विभेद, भिन्नता, अनेकता, विषमता और विरोधाभास हो सकता है। अगर यह 'एक' बात सत्य है कि तीन और एक मिलाकर चार होते हैं तो ये 'अनेक' बातें सत्य नहीं हो सकतीं कि तीन और दो, तीन और चार, तीन और सात मिलकर भी चार ही होते हैं। जब सत्य 'एक' है तो फिर वह चीज़ जो 'शाश्वत सत्य' (Eternal Truth), ईश्वरीय सत्य (Divine Truth), और जगत्व्यापी (Pervading the Universe) है—अर्थात् 'सत्य धर्म'—वह अनेक कैसे हो सकता है? अगर एक राष्ट्र 'एक' के बजाय 'अनेक' संविधानों द्वारा संचालित नहीं हो सकता तो मानवजाति के संचालन के लिए ईश्वर जैसी सर्वतत्वदर्शी हस्ती अनेक संविधानों (धर्मों) की रचना एवं मानवता के समक्ष उनकी प्रस्तुति भला कैसे कर सकती है? क्या ईश्वर ऐसी ग़लती कर सकता

है कि मानवजाति को अनेक (परस्पर विरोधात्मक) धर्म देकर उन्हें लड़ने तथा संसार में उपद्रव और पृथ्वी पर अराजकता (Anarchy) फैलाने को छोड़ दिया हो? हम ईश्वर के प्रति ऐसी दुर्भावना अपने मन-मस्तिष्क में कदापि उत्पन्न नहीं होने दे सकते। इस तथ्य का तक़ाज़ा है कि हम इस नीति और इस सोच पर पूरी गम्भीरता, निष्ठा तथा सत्यप्रियता के साथ ग़ौर करें कि सत्य-धर्म अनेक हैं या एक...'मात्र एक'!

'एक'...न कि 'अनेक'

संसार की बड़ी-बड़ी 'सच्चाइयाँ' जो हमारे विश्वास और अनुभव की परिधि में हैं, वे ये हैं :

- ईश्वर **एक** है, **न** कि अनेक।
- परम-सत्य, आदि-सत्य **एक** है, **न** कि अनेक।
- मानवजाति की उत्पत्ति जिन प्रथम माता-पिता से हुई, वे **एक** थे, **न** कि अनेक।
- आदिकाल से मनुष्यों की जन्म प्रणाली **एक** ही रही है, न कि अनेक।
- हमेशा से जन्म-मृत्यु का ईश्वरीय विधान **एक** ही रहा है, न कि अनेक।
- आदिकाल से मनुष्य के शरीर की रचना (हाथ, पैर, नाक, कान, इन्द्रियाँ, रक्त इत्यादि) **एक** ही प्रकार से और **एक** ही तरह के तत्वों से होती रही है, न कि अनेक प्रकार से तथा अनेक प्रकार के तत्वों से।
- मनुष्य चाहे किसी भी युग, क्षेत्र, वंश और रंग के हों, उनमें हमेशा कुछ गुण और अवगुण (जैसे प्रेमभाव, नेकी, हमदर्दी, सच्चाई, दयाभाव, सहयोग-सहायता, ख़ुशी, आशा, हत्या, क्षमा, त्याग व उत्कर्ष इत्यादि तथा गुस्सा, नफ़रत, लोभ ईर्ष्या, दम्भ, ग़म, निराशा, झूठ, अवहेलना, प्रतिशोध इत्यादि), कम या ज़्यादा **एक** ही शाश्वत तथ्य के रूप में मौजूद रहे हैं। इस अवस्था में अपवाद (Exceptions) या अनेकता व विभिन्नता कभी नहीं रही।

यह ब्रह्माण्ड (कायनात) **एक** है, वायुमण्डल **एक** है। जिन प्राकृतिक व भौतिक नियमों में यह धरती, आकाश स्थित हैं और इनके ऊपर, इनके भीतर तथा इनके बीच जो कुछ भी नियम पाया जाता है वह नियम हर जगह, हर

काल में एक ही रहा है, न कि भिन्न।

● सारे इनसानों की मूलभूत आवश्यकताएँ (जैसे भोजन, पानी, हवा, सूर्य-प्रकाश, ऊष्मा, शारीरिक ऊर्जा व शक्ति, स्वास्थ्य, नींद आदि) सदा से एक ही प्रकार की रही हैं न कि अनेक और विभिन्न, विषम प्रकार की। और जब मनुष्य का अस्तित्व और उसका जीवन एक-समान अवस्थाओं और परिस्थितियों में शाश्वत रूप से घिरा हुआ है तो उसकी बुद्धि, उसकी चेतना एवं उसका विवेक सहज व स्वाभाविक रूप से यह माँग करता है कि अवश्यतः 'धर्म' भी एक ही होना चाहिए और ईश्वरीय सत्य-धर्म अनेक नहीं हो सकते।

व्यावहारिक स्तर पर धर्मों की 'अनेकता'

बुद्धि-विवेक और धर्म के ऐक्य (Oneness) की माँग और सैद्धान्तिक स्तर पर इस ऐक्य पर उसकी संतुष्टि के बावजूद धर्मों का अनैक्य (Multiplicity) एक व्यावहारिक तथ्य है। हम भली-भाँति जानते हैं कि यदि किसी भी वस्तु की व्यावहारिक स्थिति, उसकी मूल सैद्धान्तिक (dejure) स्थिति के विपरीत हो तथा उससे टकराती हो तो ऐसी 'व्यावहारिकता' उस वस्तु की 'सैद्धान्तिकता' को निरस्त नहीं करती। उदाहरणतः यदि एक स्त्री अपने पति के साथ-साथ कई दूसरे पुरुषों को भी एक समान पति समझने लगे तो यह एक असामान्य व अस्वाभाविक तथा अमान्य स्थिति होगी और उसके अस्ल पति के पतित्व के ऐक्य को निरस्त नहीं कर सकेगी।

इस प्रकार विभिन्न कारणों, कारकों और ग़लतियों से अगर मानव-इतिहास और इनसानी समाज में व्यवहारतः कई धर्म मौजूद रहे हैं, तो यह एक अस्वाभाविक तथा असामान्य स्थिति है। यह स्थिति इस बात का प्रमाण है कि 'मूल-धर्म', 'ईश्वरीय-धर्म', 'सत्य-धर्म', 'शाश्वत-धर्म' का ऐक्य काल-कालान्तर में इनसानी भूल-चूक, लापरवाही, काट-छांट, संशोधन-परिवर्तन, हस्तक्षेप आदि से गुज़रते हुए अनैक्य में परिवर्तित हुआ है।

'धर्मों' में विभेद, विषमता एवं असमानता

हम जब गम्भीरता एवं निष्ठा (Sincerity and loyalty) के साथ तथा बुद्धि-विवेक की एकाग्रता (Concentration) के साथ 'धर्मों' पर एक भरपूर और गहरी निगाह डालते हैं तो कुछ अकाट्य (Undeniable) तथ्य हमारे

सामने उभर कर आ जाते हैं, जैसे :

(1) एक धर्म के अनुसार पूज्य-उपास्य हस्ती एक...'मात्र एक'...है। दूसरे धर्म के अनुसार 'तीन' और तीसरे धर्म के अनुसार असंख्य व बेशुमार।

(2) एक धर्म के अनुसार पूज्य ईश्वर न किसी की संतान है, न उसकी कोई संतान है। दूसरे धर्म के अनुसार उसके एक 'बेटा' भी है अर्थात् वह (निराकार होते हुए भी) एक 'पिता' भी है। तीसरे धर्म के अनुसार उसकी पत्नियाँ, माएँ, बाप, संतान, ख़ानदान आदि सब कुछ है।

(3) एक धर्म में शराब, जुआ, नशाख़ोरी, परस्त्रीगमन आदि महापाप और अवैध है, दूसरे धर्मों में वैध।

(4) एक धर्म इहलौकिक जीवन के अंत के बाद परलोक में मात्र एक और जीवन का आवाहक है, दूसरा धर्म ऐसे पुनरुज्जीवन का भी आवाहक है जो उपर्युक्त के बिल्कुल विपरीत है वह यह कि आवागमनीय पुनर्जन्म का, जिसमें मनुष्य बार-बार जन्म लेता है और तीसरा ऐसा भी धर्म है जो इस जीवन के पश्चात् किसी भी जीवन का इनकार करता है।

(5) एक धर्म का कहना है कि मनुष्य अपने सत्कर्मों या दुष्कर्मों का अन्तिम और भरपूर पुरस्कार व पारितोषिक या दण्ड, परलोक में ईश्वरीय अदालत में शुद्ध व पूर्ण न्याय-प्रक्रिया से गुज़र कर क्रमशः 'स्वर्ग' या 'नरक' के रूप में पाएगा। दूसरा धर्म कहता है कि केवल उसी नस्ली (वर्ण-आधारित) धर्म के लोग स्वर्ग प्राप्त करेंगे बाक़ी सारे इनसान नरक के भागी होंगे। तीसरा धर्म कहता है कि अमुक विभूति (महापुरुष) को ईश-पुत्र मान लेना ही स्वर्ग-प्राप्ति की ज़मानत बन जाता है। चौथा धर्म कभी यह कहता है कि इसी जीवन के सुख व दुख ही वास्तव में स्वर्ग व नरक हैं। कोई कहता है कि मनुष्य अपने पुण्य कार्यों के परिणाम मृत्यु के पश्चात् इसी संसार में 'मनुष्य' का जन्म लेकर वापस आ जाता है और सुख भोगता है और इसी प्रकार पापकर्मों के प्रतिफलस्वरूप या तो मनुष्य का जन्म लेकर अपाहिज, कोढ़ी, रोगी, दरिद्र, निर्धन व दुखग्रस्त बना रहता है या कुत्ता, बिल्ली, कीड़ा-मकोड़ा, गधा-घोड़ा आदि बन जाता है।

(6) एक धर्म के अनुसार आत्मा और शरीर एक-दूसरे के पूरक हैं तथा मानव-जीवन को कार्यान्वित रखने के लिए परस्पर सहायक हैं तथा उनमें

परस्पर सामन्जस्य है। दूसरे धर्म के अनुसार शरीर आत्मा के लिए एक क़ैद (कारागार) है, इस क़ैद और इसके क़ैदी में कोई सामंजस्य नहीं। आत्मा, शरीर की इस 'जेल' से छुटकारा पाने के लिए हर क्षण व्याकुल व तत्पर रहती है।

(7) एक धर्म का पक्ष है कि पारलौकिक जीवन में 'नरक की आग' से छुटकारा मिल जाना 'मुक्ति' (निजात) है। दूसरे धर्म का पक्ष है कि आत्मा का, शरीर के बंधन से छुटकारा पा जाना मुक्ति (Salvation) है।

(8) उपरोक्त के अतिरिक्त संसार में अनेक ऐसे 'धर्म' (?) भी हैं जिनमें से, कोई ईश्वर के अस्तित्व को ही नहीं मानता। कोई मानता है तो यह भी कहता है कि ईश्वर का हमारे जीवन की गतिविधियों से, हमारे क्रिया-कलापों से, सही-ग़लत या वैध-अवैध के निर्धारण व निर्देशन से क्या लेना-देना? कोई कहता है कि ईश्वर हैं या नहीं है, यह विचार ही व्यर्थ है, कुछ मानवीय गुण और कुछ मानव-मूल्य (Human Values) अपने व्यक्तिगत अस्तित्व में पैदा कर लेना ही मनुष्यता की पराकाष्ठा है। कोई धर्म किसी व्यक्ति के स्वच्छन्द चिन्तन-मनन से पैदा हुआ। कोई धर्म बस परम्पराओं व संस्कारों तक सीमित है तो कोई धर्म किसी शख़्सियत के प्रति श्रद्धाओं पर ही। किसी धर्म में अन्धविश्वासों की भरमार है तो किसी में मनगढ़ंत कथाओं (Mythurer) की। कोई धर्म राष्ट्र व देश की धुरी पर घूमता है तो कोई सभ्यता एवं संस्कृति की धुरी पर। किसी धर्म को यही नहीं मालूम कि उसकी परिभाषा क्या है, उसकी मूल धारणाएँ क्या हैं, उसकी सीमाएँ क्या हैं जिनसे निकल जाने या जिनसे बग़ावत कर देनेवाला व्यक्ति उस धर्म के अन्तर्गत नहीं रह जाता बल्कि विधर्मी हो जाता है। बहुत से धर्म निश्चितता, दृढ़ता व विश्वास के साथ यह बात सप्रमाण बताने में असमर्थ हैं कि उनके विश्वसनीय मूल धर्म-ग्रन्थ क्या हैं? और हैं तो वे ईश्वरीय-अवतरित हैं या मानवकृत या दोनों के सम्मिश्रण? वे कब अवतरित हुए, किस (ईशदूत) पर अवतरित हुए? उन्हें लिखित रूप में कब लाया गया और कौन लाया, किसकी निगरानी व निरीक्षण में लाया गया? उसमें कितनी सामग्री थी, कुछ निश्चित नहीं।

जब स्थिति यह हो...

जब स्थिति यह हो, जिसकी उपरोक्त एक संक्षिप्त समीक्षा की गई और यह समीक्षा बुद्धि-विवेक के अनुकूल तथा तार्किक व बौद्धिक मानदंडों पर पूरी

उतरती हो, तो निम्नलिखित बातों का न दावा किया जा सकता है, न प्रचार और न ही इनकी शिक्षा दी जा सकती है और न कोई विवेकशील व सत्यनिष्ठ व्यक्ति इनका पक्षधर व आवाहक हो सकता है कि :

- सारे धर्म 'सत्य' हैं।
- सारे धर्म 'एक समान' हैं।
- सारे रास्ते (धर्म) एक ही ओर ले जाते हैं, चाहे उन मार्गों की दिशाएँ अलग-अलग विभिन्न या एक-दूसरे के विपरीत ही क्यों न हों।
- सारे धर्म इनसानों को एक ही गन्तव्य (मंज़िल) पर पहुँचा देंगे, चाहे उन धर्मों में कितनी ही भिन्नता, विभेद और पारस्परिक विरोध हो।
- अतः सर्वधर्म समानता, सर्वधर्म एकता, सर्वधर्म समभाव, सर्वधर्म समन्वय, सर्वधर्म सामंजस्य की नीति ही 'सर्व-सत्य' नीति है और इसी नीति को सर्वमान्य और सर्वस्वीकार्य होना चाहिए।

सारे धर्म 'एक समान' नहीं

सारे धर्म 'सत्य' और 'एक समान' कदापि नहीं हैं। यह मात्र एक सैद्धान्तिक तथ्य ही नहीं है बल्कि एक व्यावहारिक तथ्य भी है, जो लोग इस एक-समानता के प्रचुर आह्वाहक व पक्षधर हैं स्वयं वही लोग व्यावहारिक स्तर पर इसका खंडन, विरोध और प्रतिरोध भी करते हैं। कोई भी व्यक्ति (अगर वह 'धार्मिक' है तो) ऐसा नहीं किया करता कि मस्जिद में जाकर नमाज़ भी अदा कर ली, मंदिर में जाकर मूर्ति-पूजा भी कर ली और गिरजाघर में जाकर यीशु की प्रार्थना में भी शामिल हो गया। अगर लोग सारे धर्मों को सत्य मानते तो ऐसा नहीं होना चाहिए था कि जब कोई व्यक्ति एक धर्म को छोड़कर दूसरा धर्म स्वीकार कर ले तो उसका विरोध किया जाता, समाज में उपद्रव व हिंसा भड़क जाती, परिवारजनों और सम्बन्धियों की ओर से उसे प्रताड़ित, तिरस्कृत व बहिष्कृत कर दिया जाता, धर्मान्तरण के विरुद्ध क़ानून बनाए जाते। जब एक व्यक्ति 'सत्य' से 'सत्य' की ओर ही प्रस्थान करता है तो फिर इतनी हलचल, इतना रोष व क्षोभ, इतनी अशान्ति, इतना विरोध और इतना हड़कंप आख़िर क्यों? वास्तव में सिर्फ़ यही एक बात इस सच्चाई का सबसे बड़ा, और हर आम व ख़ास इनसान की समझ में सहज व सरल रूप में समा

जाने वाला प्रमाण है कि 'सर्वधर्म समानता'-एक नारा तो हो सकता है, लेकिन बहुत से नारों की तरह ऐसा नारा, जिसका 'सत्य' और 'सत्यवादिता' से दूर का भी कोई सम्बन्ध नहीं।

'सत्य-धर्म' की खोज

उपरोक्त निष्कर्ष पर पहुँचने के बाद शाश्वत सत्य, जगतव्यापी सत्य, परम-सत्य अर्थात् 'सत्य धर्म' की खोज ही हमारा परम कर्तव्य क़रार पाता है। यह खोज अनुमान, अटकल, दिशाभ्रम या दिशाविहीनता और भटकाव (Bewilderness) के साथ नहीं की जा सकती और न ही करनी चाहिए। धर्म जीवन का ऐसा अति महत्वपूर्ण और गम्भीर विषय है कि इस बारे में अगम्भीरता या निष्ठाहीनता बड़ी हानिकारक सिद्ध होगी। अतः इस खोज के लिए कुछ दिशादर्शक चिह्न अवश्य सामने होने चाहिएं। उदाहरणार्थ वह :

(1) हमारे पैदा किए जाने का उद्देश्य बताता है या नहीं? अगर नहीं बताता तो वह हमारे लिए स्वीकार्य नहीं होगा। अगर बताता है तो वह उद्देश्य क्या है?

(2) मृत्यु-पश्चात जीवन की व्याख्या स्पष्ट, सन्तोषजनक, पूर्ण व पारदर्शी (Transparent) रूप में करता है या नहीं?

(3) ईश्वर की वास्तविकता अच्छी तरह और पूरी तरह हमें बताता-समझाता है या नहीं? ऐसी वास्तविकता, जिसमें भ्रम, शंका-सन्देह, उलझाव आदि न हो।

(4) हमारे मार्गदर्शन का बहुआयामी व विश्वसनीय प्रावधान करता है या नहीं।

(5) ईश्वर और हमारे बीच सम्बन्ध का प्रारूपण और निर्धारण करके हमें बताता है या नहीं। इसके लिए उसके पास जो माध्यम है वह स्वयं ईशकृत और विश्वसनीय है या नहीं?

(6) ईश्वर के हम पर जो अधिकार हैं अर्थात् उसके प्रति हमारे जो कर्तव्य हैं उनकी पूरी व्याख्या करता है या नहीं।

(7) हमारे अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियों में हमारे साथ रहता, हमारा साथ देता, हमारी सहायता करता, हमारे काम आता, हमें संभालता-सहारा देता है या हर अवस्था में बस पूजा-स्थलों पर, उपासना गृहों में ही बैठा

रहता है। हमें भटकने, धक्के, हताश व हताहत होने के लिए छोड़ तो नहीं देता?

बुद्धिमत्ता की माँग

बुद्धिमानी यह नहीं है कि परस्पर भिन्न-भिन्न व प्रतिकूल धर्मों को एक समान माना जाए, बल्कि बुद्धिमानी की अपेक्षा यह है कि सारे प्रचलित धर्मों को उपरोक्त मानदंडों पर परख कर देखा जाए कि वास्तव में उनमें से 'सत्य-धर्म' कौन-सा है, और यह परख व खोज बिना किसी पूर्वाग्रह (Prejudice), भावुकता (Emotionality) या दुर्भावना के की जाए। धर्मों के बाहुल्य में कुछ धर्मों (जैसे ईसाइयत, यहूदियत, सनातन-हिन्दू और इस्लाम) में कुछ समानताएँ पाई जाती हैं, जैसे 'एकेश्वरवाद' और 'परलोकवाद' की धारणाएँ। इन समानताओं के कारण और आधार पर विचार करने के लिए उपरोक्त 'खोज' को आरंभ-बिन्दु बनाना हमें सही नतीजे तक पहुँचा सकता है। साथ ही यह बात भी हमारे लक्ष्य-प्राप्ति में सहायक हो सकती है कि इन समानताओं के होते हुए उन अनेक असमानताओं के कारक व कारण तथा उनकी वास्तविकता क्या है जिन्होंने 'धर्म के ऐक्य' को 'धर्मों के अनैक्य' में बदल दिया। इस उलझन और पेचीदगी को सुलझाने का न कोई प्रयास व्यापक स्तर पर किया गया है और न कोई रास्ता इख़्तियार किया गया है। यही कारण है कि संपूर्ण विश्व-समाज, विशेषतः हमारा भारतीय समाज, धर्मों के अनैक्य (Multiplicity and Diversity of Religions) की व्यावहारिक स्थिति को सैद्धान्तिक सत्य की स्थिति मानने की ग़लती करता आ रहा है। इस विषय पर इस्लाम का पक्ष बहुत स्पष्ट, सरल और बुद्धिसम्मत (Convincing) है।

'सर्वधर्म-समान हैं'–के सम्बन्ध में इस्लाम का दृष्टिकोण

इस्लाम का पक्ष यह है कि : **''धर्म का उद्गम ईश्वर है और ईश्वर मात्र एक है; इसी तरह धर्म मानव के लिए है और मानवजाति मात्र 'एक' है इसलिए धर्म (अर्थात् 'शाश्वत सत्यधर्म') भी एक है, मात्र 'एक'।''**

इस्लाम के अनुसार, सत्य-धर्म की मूल धारणाएँ 'एकेश्वरवाद', 'परलोकवाद', और 'ईशदूतत्व' हैं। पृथ्वी पर इनसान का आगमन तथा मानवजाति की उत्पत्ति इन्हीं मूलधारणाओं पर आधारित 'धर्म' के साथ हुई। प्रथम मानव 'आदम'

स्वयं में ईशदूत (नबी) भी थे। उनका धर्म एकेश्वरवाद, परलोकवाद, तथा ईशदूतवाद पर आधारित था। इतिहास के विभिन्न चरणों में ईश्वर जिन 'ईशदूतों' की नियुक्ति मानवजाति के मार्गदर्शन के लिए करता रहा तथा उन पर जो ईशग्रन्थ मानवजाति के पथ-प्रदर्शन के लिए अवतरित करता रहा उन सबकी शिक्षाएँ समान रूप से इन्हीं (उपरोक्त) तीन मूल-धारणाओं पर ही आधारित रहती थीं। विभिन्न कारकों व कारणों से, काल-कालांतर में मूल सत्यधर्म में, इनसानों की ग़लती से विकार, बिगाड़, विदूषण, बदलाव, न्यूनाधिक्य परिवर्तन होता रहा। लेकिन इस सबके बावजूद धर्म-ग्रन्थों में सत्य धर्म के मूल तत्व (एकेश्वरवाद, परलोकवाद, ईशदूतवाद) कुछ न कुछ हद तक बाक़ी और किसी न किसी हद तक सुरक्षित रह गए। विभिन्न युगों के ईशदूतों (नबियों/रसूलों/ऋषियों) की शिक्षाओं के साथ भी ऐसा ही हुआ। कुछ धर्मों में आज जो कुछ समानता नज़र आ रही है उसका कारण यही है। यद्यपि यह समानता आंशिक भी है और अपूर्णता व अशुद्धता से ग्रस्त भी है। फिर भी इसी आंशिक व अपूर्ण समानता के कारण इस विचार-धारा का प्रचलन भी हो गया कि सारे धर्म एकसमान रूप से सत्य हैं। इस्लाम इस ग़लतफ़हमी का निवारण इस तर्क के साथ करता है कि अगर यह समानता सम्पूर्ण होती तो कई अलग-अलग धर्म प्रचलित नहीं होते, बल्कि एक ही धर्म का प्रचलन होता; उस धर्म का प्रचलन जो वास्तविक ईश्वरीय सत्य धर्म है (जिसका, इस्लाम आवाहक है)। लेकिन व्यावहारिक स्तर पर ऐसा नहीं है। धर्मों में कुछ समानताओं के बावजूद जो अनेक और बृहद असमानताएँ पाई जाती हैं, इस्लाम उसका कारण भी स्पष्ट रूप से बयान करता है।

धर्मों में असमानता व भिन्नता का कारण

इस्लाम एक ऐतिहासिक तथ्य को स्पष्ट करता है कि दीर्घकालीन मानव-इतिहास के अनगिनत चरणों में इनसानी भूल-चूक व लापरवाही से भी, और जान-बूझकर भी, ईश-ग्रन्थों तथा ईशदूतों की शिक्षाओं में परिवर्तन, विदूषण और कमी-बेशी होती रही है जिसके नतीजे में ईशप्रदत्त मूल सत्य-धर्म का प्रारूप बिगड़ता व बदलता रहा और धर्म को अनेक व विभिन्न रूप मिलता रहा। यूँ इनसानों द्वारा अलग-अलग धर्म बनते रहे। धर्म का ऐक्य, 'बनने-बिगड़ने' की इस प्रक्रिया के कारण टूटता बिखरता रहा और परिणामतः अनेक व

असमान धर्म अस्तित्व में आते रहे। स्थिति के सुधार के लिए बार-बार ईश्वर अपने दूतों (नबियों, ऋषियों) को भेजता रहा। ईशग्रन्थों के अवतरण का ईश्वरीय प्रयोजन भी मूल सत्य-धर्म की पुनरावृत्ति और पुनर्स्थापना मात्र होता था।

अन्त में जब वह युग आ गया जिसमें ईश-ग्रन्थ को और ईशदूत की शिक्षाओं और उसके आदर्श व आह्वान को पूरी तरह, शुद्धता व विश्वसनीयता के साथ सुरक्षित व संरक्षित रखने तथा विकृत व विदूषित होने से बचाने के साधन उपलब्ध हो गए तो मूल सत्य धर्म अपने मूल व संपूर्ण व शुद्ध रूप में मानवजाति को प्रदान कर दिया गया, जो 'इस्लाम' के नाम से जाना जाता है। क़ुरआन में ईश्वर की ओर से उद्घोषणा हुई : "निस्सन्देह ईश्वर के निकट धर्म (दीन) तो बस इस्लाम ही है। सत्य को असत्य से छाँटकर रख दिया गया है।" (2:256)

इनसानी ग़लतियों से धर्म में सत्य और असत्य जिस तरह से संमिश्रित होकर गड्मड् हो गए थे और जिसकी वजह से अनेक और विभिन्न धर्म अस्तित्व में आ गए थे और यह भ्रम उत्पन्न हो गया था कि ये सारे धर्म सत्य हैं, सारे 'ईश्वरीय' धर्म ही हैं, सबके रास्ते बज़ाहिर अलग-अलग हैं, लेकिन सब एक समान सत्य हैं, सब इनसानों को एक ही मंज़िल पर पहुँचाते हैं। अतः सभी धर्मों के प्रति समभाव व सामन्जस्य की श्रद्धा होनी चाहिए। इस भ्रम का इस्लाम ने पूर्ण निवारण कर दिया और कहा कि सत्य धर्म तो एक ही है, सदा एक ही रहा है। (इसका नाम अनेक युगों, भू-भागों व अनेक भाषाओं में चाहे जो भी रहा हो।)

सत्य धर्म की खोज पूरी हुई

इस तरह अभीष्ट सत्य-धर्म की खोज पूरी हुई। इसकी तीन मूलधारणाओं में से पहली धारणा 'एकेश्वरवाद' में आ गई। अनेकेश्वरवाद (या बहुदेववाद, अर्थात् शिर्क) की अशुद्धता और अपूर्णता को हटाकर इस्लाम ने विशुद्ध एवं सम्पूर्ण एकेश्वरवाद को पुनःस्थापित कर दिया। 'परलोकवाद' की धारणा में जो त्रुटियाँ या अशुद्धियाँ आ गई थीं, जैसे : स्वर्ग, नरक, मुक्ति एवं मृत्योपरांत जीवन के विषय में अनेक और विरोधात्मक विचारधाराएँ तथा धारणाएँ, उन सबका निवारण करके विशुद्ध परलोकवादी धारणा को पुनः स्थापित कर

दिया। इसी तरह, सत्य धर्म की तीसरी मूलधारणा—'ईशदूतवाद'—में जो परिवर्तन और विकार आ चुका था, जैसे : ईशदूत को ईश्वर का अवतार, अर्थात् स्वयं ईश्वर का साकार रूप मान लेना या ईशदूत को ईश्वर की संतान और स्वयं ईश्वर मान लेना इत्यादि—इस्लाम ने इन विकार और विकृतियों को दूर करके ईशदूतवाद की विशुद्ध अवधारणा की भी पुनःस्थापना की।

उपरोक्त तीनों शुद्धिकृत मूलधारणाओं पर आधारित एक ऐसी संपूर्ण आध्यात्मिक, नैतिक, वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक तथा सामूहिक जीवन-व्यवस्था और जीवन-विधान का नाम 'इस्लाम' है जो सत्य-धर्म के उपरोक्त सारे मानदंडों (Standards) पर पूरा व खरा उतरता है। यह किसी भी अनुकूल या प्रतिकूल स्थिति में न इनसान का साथ छोड़ता है, न उसके समाज और उसकी सामूहिक व्यवस्था का। यह हर क्षण मनुष्य को ईश्वर के साथ रखता है और हर पल ईश्वर को मनुष्य के साथ।

इस अवस्था में आकर धर्म का ऐक्य (Oneness) प्रमाणित हो जाता है और 'धर्मों के अनैक्य' का सैद्धान्तिक स्तर पर सच एवं मान्य (Acceptable) होना खंडित हो जाता है। यही 'धर्म का ऐक्य', 'मानवजाति के ऐक्य' के ठीक अनुकूल है और वैश्विक भाईचारा (Global Brotherhood) की मज़बूत बुनियाद भी।

इस्लाम की नीति यह है कि 'चयन की स्वतन्त्रता' हर व्यक्ति का 'मानव-अधिकार' है। हर मनुष्य को ईश्वर ने बुद्धि-विवेक देकर, यह स्वतन्त्रता प्रदान की है कि वह—सत्य धर्म, असत्य धर्म, ईश्वरीय धर्म, मानवकृत धर्म, ईशाधारित धर्म, ईश्वरविहीन धर्म (मत) यानी कुछ भी—सत्य-असत्य में से जिसे चाहे अपना ले और जिसे चाहे तिरस्कृत कर दे। उसे, उसी के अनुसार कुछ परिणाम तो इसी जीवन में, और पूर्ण परिणाम मृत्यु-पश्चात् पारलौकिक जीवन में मिलकर रहेंगे। अलबत्ता उसे सत्य-धर्म (इस्लाम) की ओर बुलाने की शिक्षा व आदेश सत्य-धर्म के अनुयायियों को ईश्वर और उसके सच्चे पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) की ओर से है। और साथ ही दूसरे धर्मों की व्यावहारिक हैसियत को मान्यता देने का भी आदेश है लेकिन यह इजाज़त हरगिज़ नहीं है कि समभाव व समानता के नाम पर, सत्य व असत्य को यूँ गड्मड् कर दिया जाए कि सत्यधर्म की हैसियत ही खोकर रह जाए।

इस्लाम, धर्मों में 'समभाव' का नहीं, बल्कि धर्मों के अनुयायियों व विभिन्न धार्मिक समुदायों के प्रति मानवीय आधार पर 'सद्भाव' का पक्षधर है। इस्लाम का अपने अनुयायियों को यह आदेश है कि किसी का धर्म कुछ भी हो, सामान्य स्थिति में भी मुसलमानों पर उसके बहुत से अधिकार हैं और किसी विशेष परिस्थिति में भी। इनसानी भाईचारा के आधार पर प्रेम, सहायता, सहयोग, इन्साफ़, सद्भावना, दयाशीलता, क्षमाशीलता, सौहार्द आदि का रवैया हर धर्म के अनुपालक के प्रति अपनाया जाएगा। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि लोगों को सत्य-असत्य के प्रति जागरूक करने का काम छोड़ दिया जाएगा और सत्य-असत्य को समान हैसियत दे दी जाएगी। इस्लाम में ऐसे रवैये की कोई गुंजाइश इस वजह से नहीं है कि यह ईश्वर के प्रति कृतघ्नता होगी और साथ ही मानवजाति टुकड़ों में टूट-बिखर कर रह जाएगी। सत्य-धर्म को 'मात्र एक' न मानने के कारण वस्तुस्थिति भी दुर्भाग्यवश यही है कि मानवजाति टूट-बिखर कर टुकड़े-टुकड़े हो गई है। इस्लाम चाहता है और यही उसकी दावत (आह्वान) भी है कि यही 'मात्र एक' सत्यधर्म है जो पूरी मानवजाति को सांसारिक जीवन में एकत्व की लड़ी में पिरो सकता है। और इसी पर चलकर पारलौकिक जीवन में सारे मानव, जो परम दयावान ईश्वर के बन्दे हैं, नरक की आग से 'मुक्ति' पाकर स्वर्ग का अनन्त सुख भोग सकेंगे।

OO

धर्म : एक या अनेक

❖ डॉ॰ सैयद शाहिद अली

नॉलेज (ज्ञान) का मतलब होता है 'समझ' (Understanding)। समझ चार तरह की होती है : ख़ुदा के बारे में, इनसान के बारे में, दुनिया के बारे में और मरने के बाद के बारे में। इनसान की समझ का सम्बन्ध बुद्धि से होता है। बुद्धि सम्पूर्ण नहीं होती। इनसान की बुद्धि यह बता सकती है कि स्रष्टा होना चाहिए, मगर स्रष्टा सृष्टि से क्या चाहता है वह यह नहीं बता सकती। मरने के बाद जीवन होना चाहिए, मगर वह कैसा होगा? यह बुद्धि नहीं बता सकती। इनसान को इबादत के रूप में स्रष्टा का शुक्र अदा करना चाहिए, मगर वह कैसे करे, यह बुद्धि नहीं बता सकती।

बुद्धि कहती है कि बुद्धि के देनेवाले की तरफ़ से इनसान को उसके मूल प्रश्नों का उत्तर मिलना चाहिए। क्योंकि इन प्रश्नों के उत्तर इनसान स्वयं तलाश नहीं कर सकता।

बुद्धि कहती है कि इनसान को सही ज़िन्दगी गुज़ारने और नुक़सान से बचने के लिए इन सवालों के भी जवाब जानना ज़रूरी है : इनसान का स्वयं से रिश्ता कैसा हो, इनसान और इनसान के बीच रिश्ता कैसा हो, इनसान और समाज के बीच रिश्ता कैसा हो? मर्द और औरत के बीच रिश्ता कैसा हो? इनसान और कायनात (ब्रह्माण्ड) के बीच रिश्ता कैसा हो? इनसान का मुसीबत व ख़ुशहाली, दुख-सुख, सफलता व असफलता से रिश्ता कैसा हो? इनसान का खाने से रिश्ता कैसा हो? इनसान का सेक्स के साथ रिश्ता कैसा हो? इनसान का दौलत और ग़रीबी के साथ रिश्ता कैसा हो? इनसान के लिए वास्तव में क्या सही है और क्या ग़लत? इनसान के लिए क्या फ़ायदेमन्द है और क्या नुक़सानदेह?

दुनिया के सारे ज्ञान (Knowledge) को दो हिस्सों में बाँट सकते हैं : अनुभव से प्राप्त किया गया ज्ञान (Acquired-knowledge) और ख़ुदा की

तरफ़ से दिया गया ज्ञान (Revealed-knowledge)।

पहली तरह का ज्ञान (Social Sciences, Humanities & languages, Sciences etc.) ज्ञानेन्द्रियों (Five-Senses) की मदद से प्राप्त होता है। यह ज्ञान सिर्फ़ यह बता सकता है कि इनसान और कायनात (Man & Universe) क्या (What) है? और कैसे (How) है?

दूसरी तरह का ज्ञान (अर्थात् ख़ुदा की तरफ़ से दिया गया ज्ञान) पंच-ज्ञानेन्द्रियों की मदद के बिना, सीधे तौर पर नबियों और पैग़म्बरों को मिलता है। यह ज्ञान बताता है कि इनसान क्यों पैदा किया गया है?

धर्म, ख़ुदा की तरफ़ से दिए गए ज्ञान (नॉलेज) का नाम है। यह हमारे उन बुनियादी सवालों का जवाब देता है, जिनका जवाब हमें और कहीं से नहीं मिल सकता : क्या हमारा कोई बनानेवाला है? अगर है, तो वह हमसे क्या चाहता है? हम कहाँ से आए? क्यों आए? और कहाँ जाना है? हम स्वतन्त्र हैं या अधीन?

बहुत से लोग समझते हैं कि आज के इस आधुनिक युग (Modern-Age) में धर्म की ज़रूरत नहीं है। यह ग़लत है।

आधुनिकता (Modernization) का सम्बन्ध, ज़िन्दगी गुज़ारने के तरीक़े (Life-Style) से है। प्राचीनकाल में इनसान पैदल चलता था, आज कार व हवाई जहाज़ से चलता है।

धर्म का सम्बन्ध, मूल्यों से है। जैसे इनसाफ़ सच्चाई, ईमानदारी, वफ़ादारी इत्यादि। आज से हज़ार साल पहले, गाँव का एक सरपंच, पैदल चलकर पंचायत पहुँचता था, चबूतरे पर बैठता और फ़ैसला करता था। मगर आज सर्वोच्च न्यायालय का एक जज, कार से कोर्ट पहुँचता है, मेज़-कुर्सी पर बैठकर कम्प्यूटर की मदद से फ़ैसला करता है। सरपंच और जज, दोनों के लिए अपने फ़ैसलों में इनसाफ़ करना बराबर महत्व रखता है। इनसाफ़ से फ़ैसला करने की जितनी ज़रूरत हज़ार साल पहले थी, आज भी उतनी ही है। अब चूँकि इनसाफ़ धर्म से सम्बन्धित मूल्य है इसलिए, धर्म भी हर काल में, इनसान की ज़रूरत बना रहता है।

दुनिया के समस्त ज्ञान, ज़िन्दगी गुज़ारने के तरीक़े (Life-style) को तरक़्क़ी देते हैं और इनसान की सेहत की देखभाल करते हैं। पहले इनसान

पैदल चलता था, फिर बैल-गाड़ी से, फिर साईकल से, फिर कार से, फिर हवाई जहाज़ से, फिर मेरीन व स्पेस-शटल से। पहले इनसान लकड़ियाँ जलाकर खाना पकाता था, मगर आज गैस और ओवन से।

धर्म इनसान की ख़ूबियों (Quality of man) को तरक़्क़ी देता है। वह सिखाता है कि इनसान को ज़्यादा से ज़्यादा ईमानदार, वफ़ादार, मददगार और सच्चा बनना चाहिए।

मुख्य, ख़ुदा का सन्देश (Message) था न कि नबी। अन्तिम सन्देश (क़ुरआन) के बाद, कोई ज़रूरत नहीं रही कि कोई नया सन्देश आए या नया नबी आए। अन्तिम ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के आने के बाद, नबियों के आने का सिलसिला ख़त्म हो गया। इनसानों के मार्गदर्शन के लिए ख़ुदा का पैग़ाम—क़ुरआन—मौजूद है, जो ख़ुदा की हिफ़ाज़त में है और बदला नहीं जा सकता।

सभी आसमानी धर्मों का विषय इनसान है, जिनमें इनसान के बारे में उसके स्रष्टा ने अपनी स्कीम बताई है : इनसान की उत्पत्ति हमेशा-हमेशा के लिए की गई है। इनसान की ज़िन्दगी दो हिस्सों में बँटी है : मौत से पहले का दौर (जो अस्थाई व इनसान की परीक्षा के लिए है) और मौत के बाद का दौर (जो स्थाई है और स्वर्ग या नरक के रूप में दुनिया में किए गए अच्छे या बुरे कामों का बदला मिलने के लिए है)। इन दोनों के बीच में मौत एक तबादले के तौर पर है।

सभी आसमानी धर्म एक ही स्रोत (God) से आए हैं। सच्चाई (Truth) सभी धर्मों में पाई जाती है। लेकिन उसका अनुपात (Ratio) अलग-अलग है; किसी में 10 प्रतिशत, किसी में 30 प्रतिशत, किसी में 50 प्रतिशत......। आज इनसान को ऐसा धर्म चाहिए जिसमें 100 प्रतिशत सच्चाई (Truth) हो। अब प्रश्न यह है कि कैसे पता चले कि किस धर्म में 100 प्रतिशत सच्चाई है?

100 प्रतिशत सच्चाई (Truth) वाले धर्म की पहचान के लिए हमें हर धर्म को दो पहलुओं (Angles) से चेक करना होगा। एक, ऐतिहासिक विश्वसनीयता (Historical Credibility) अर्थात् धर्म जिस भाषा में उतरा हो, जैसी शिक्षाएँ उतरी हों, वे आज भी उसी रूप में मिलती हों। दूसरे, उस धर्म की शिक्षाएँ (Teachings) इनसानी नेचर (Human Nature) से मेल खाती हों। क्योंकि

इनसान को बनानेवाला और धर्म को देनेवाला प्रभु केवल एक है। जिसे हम अल्लाह, ईश्वर, ख़ुदा या गॉड (God) की संज्ञा देते हैं।

धर्म का मतलब होता है "रास्ता"। वह रास्ता जो इनसान को उसके स्रष्टा तक पहुँचाए। धर्म को अंग्रेज़ी में Religion कहते हैं और यह Religion बना है Religars से जिसका मतलब होता है "बाँधना" अर्थात् वह चीज़ जो इनसान और उसके स्रष्टा को एक रिश्ते में बाँधे। धर्म की दस हज़ार से ज़्यादा परिभाषाएँ हैं, लेकिन संक्षेप में हम कह सकते हैं कि "स्वयं की पहचान" धर्म की सबसे अच्छी परिभाषा है। धर्म इनसान को उसके अस्तित्व के बारे में बताता है।

किसी धर्म को विशुद्ध और सही तरीक़े से समझने के लिए ज़रूरी है उसे उसके माननेवालों से अलग करके देखा जाए। क्योंकि धर्म के माननेवाले कभी अपने ही धर्म को सही समझते हैं और कभी नहीं, कभी उस पर पूरी तरह अमल करते हैं और कभी अधूरा। इसी तरह धर्म को उस धर्म की संस्था से अलग करके देखा जाए। क्योंकि कभी-कभी धार्मिक संस्था उस धर्म में अपनी तरफ़ से ऐसी बातें बढ़ा देती या कम कर देती हैं, जो उस धर्म में नहीं होतीं। इसी तरह धर्म को कल्चर से अलग करके देखा जाए, क्योंकि धर्म पर उस इलाक़े के कल्चर का प्रभाव ज़रूर पड़ता है और माननेवाले कल्चर को भी धर्म समझते हैं।

ज़्यादातर लोग किसी विशेष धर्म को समझने के लिए उस धर्म के माननेवालों के रवैये को देखते हैं, इसी लिए वे इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि धर्म को बदलें। जबकि किसी धर्म के अध्ययन का सही तरीक़ा यह है कि उसे उसके मुख्य स्रोतों से समझा जाए। तब इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि धर्म के माननेवालों को बदलो, न कि धर्म को।

जानना चाहिए कि धर्म एक मार्गदर्शन होता है, जो एक रौशनी की तरह होता है। रौशनी किसी काम के करने के लिए इनसान को मजबूर नहीं करती। वह तो केवल अन्तर बता देती है अच्छाई व बुराई का, सही और ग़लत का। रौशनी होने के बावजूद भी अगर कोई गढ़ा देखकर उसमें गिरना चाहे तो रौशनी उसे नहीं रोकती। इसी तरह अगर किसी धर्म का माननेवाला उस धर्म की सभी शिक्षाओं को न माने तो यह उसकी ग़लती है, न कि धर्म की।

हम कह सकते हैं कि इनसान की ज़िन्दगी में धर्म के महत्व का एक बड़ा कारण "मौत" है।

मौत का मौजूद होना इनसान को धर्म की तरफ़ ले जाता है। धर्म नाम है इनसान और ख़ुदा के रिश्ते का। इस रिश्ते में सबसे मुख्य बात यह है कि ख़ुदा स्वयं क्या कह रहा है? न कि इनसान ख़ुदा के बारे में क्या कह रहा है? अफ़सोस, आजकल इस बात पर बहुत ज़ोर मिलता है कि इनसान ख़ुदा के बारे में क्या कह रहा है न कि ख़ुदा स्वयं अपने बारे में क्या कह रहा है?

ख़ुदा के बारे में दो बातें हैं : ख़ुदा की इजाज़त और ख़ुदा की ख़ुशी। ख़ुदा की इजाज़त के बिना कोई भी काम नहीं हो सकता चाहे अच्छा हो या बुरा। दिल अगर धड़क ही न रहा हो, नब्ज़ अगर चल ही न रही हो, मस्तिष्क अगर काम ही न कर रहा हो तो कोई इनसान न तो कोई अच्छा काम कर सकता है न बुरा। न वह किसी की मदद कर सकता है और न किसी को सता ही सकता है।

दुनिया में जो बहुत सारे धर्म (ख़ुदा को माननेवाले और न माननेवाले) नज़र आते हैं उसकी वजह यह नहीं है कि ये सब सही हैं और ख़ुदा उनसे ख़ुश है। इस धार्मिक अनेकता की वजह ख़ुदा की दी हुई आज़ादी है। क्योंकि कर्म करने की आज़ादी के बग़ैर इनसान की परीक्षा नहीं हो सकती थी, लिहाज़ा उसे सत्य-पथ पर या असत्य मार्ग पर चलने की या जो जी में आए कर्म करने की पूरी आज़ादी दी गई और परिणामतः मनुष्यों की एक बड़ी संख्या ने ईश्वर को छोड़कर अपने अनेक मार्ग बना लिए और इस बात से निश्चिन्त हैं कि ईश्वर उनसे ख़ुश है या नाराज़। किन्तु यथार्थ बात यही है कि सफल वही होगा जिसे ख़ुदा की ख़ुशी मिले अर्थात् जो ख़ुदा को ख़ुश करनेवाले काम करे। ख़ुदा की ख़ुशी ही इनसान को इस जीवन और मरने के बाद के जीवन में सफल कर सकती है। विभिन्न धर्मों की तरक़्क़ी से धोखा नहीं खाना चाहिए। यह तो ख़ुदा की स्कीम है इनसान के बारे में। उसने दुनिया को इनसान की परीक्षा के लिए बनाया। परीक्षा के लिए ज़रूरी था कि इनसान को आज़ादी मिले सही या ग़लत करने या न करने की।

दुनिया में धर्मों की दो क़िस्में पाई जाती हैं : वे धर्म जिनकी शिक्षाएँ इनसानों के अपने ज्ञान और अनुभवों पर आधारित हैं और वे धर्म जिनकी

शिक्षाएँ ईश्वर द्वारा मनुष्यों को दी गई।

सभी धर्मों की बुनियाद अगर ईश्वर को मान लिया जाए तो इससे समाज में एकता की सम्भावना अधिक बढ़ जाती है। एकता दो तरह की होती है: स्वाभाविक एकता और अस्वाभाविक एकता। अस्वाभाविक एकता यह है कि सब लोग एक जैसा सोचें, एक जैसा महसूस करें, एक जैसा बोलें और एक जैसा काम करें। यह असम्भव होता है। इसी लिए इस तरह की एकता पैदा करने के सभी प्रयत्न कभी भी सफल नहीं हो सके हैं। एक दूसरी एकता होती है जो स्वाभाविक एकता कहलाती है। इसमें मतभेद को सहन करके एक रहा जाता है, यही सरल व सम्भव तरीक़ा होता है। मगर यहाँ याद रखना चाहिए कि मतभेद को सहन करना और मतभेद की इज़्ज़त करना अच्छी बात है, मगर मतभेद का अनुगमन (Follow) करना सही नहीं। यह धोखा देना या धोखा खाना जैसी बात है।

धर्म : एक

अधिकतर लोग समझते हैं : सभी धर्म सही हैं। सभी धर्म एक हैं।

इस बात को मानने के दो परिणाम निकलते हैं। पहला, ख़ुदा बेकार (Useless) काम करता है। ख़ुदा ने इनसान को एक धर्म दिया, फिर दूसरा, फिर तीसरा, फिर चौथा...। दूसरा, ख़ुदा इनसानों को आपस में लड़वाना चाहता है। जैनी से कहता है, 'तू गोश्त मत खा' और मुसलमान से कहता है, 'तू गोश्त खा।'

हक़ीक़त यह है कि सारे धर्म एक नहीं हैं, बल्कि अलग-अलग हैं। हाँ! सभी (आसमानी) धर्मों का स्रोत (Source) एक परमेश्वर (God) है। इसी लिए सभी धर्मों में मिलती-जुलती बातें नज़र आती हैं। सभी कहते हैं: झूठ मत बोलो, बड़ों की इज़्ज़त करो, छोटों से मुहब्बत करो, ईमानदार रहो, न्याय करो, अमन व शान्ति से रहो।

आज मौजूद सभी धर्म अलग-अलग हैं। अगर सभी धर्म एक होते, तो सब पर एक साथ अमल किया जा सकता। किसी इनसान के लिए, सभी धर्मों की शिक्षाओं पर एक साथ अमल करना असम्भव है। हिन्दू धर्म तलाक़ की इजाज़त नहीं देता, मगर यहूदियत तलाक़ की इजाज़त देती है। कैथोलिक ईसाईयत पादरी के लिए शादी को मना करती है, मगर इस्लाम, इनसान के

लिए शादी को पसंद करता है। हिन्दू मत में धन-दौलत (लक्ष्मी) की पूजा होती है, मगर ईसाइयत में दौलत को बुरा कहा जाता है। जैन मत (दिगम्बर) में नंगे रहने को बहुत अच्छा माना जाता है, मगर इस्लाम में शरीर ढाँकने का आदेश दिया गया है। बौद्ध धर्म में दुनिया छोड़कर संन्यास लेने को सबसे बड़ा पुण्य माना गया, मगर इस्लाम में दुनिया न छोड़कर ज़िम्मेदारी निभाने को, बहुत बड़ी नेकी माना गया। जैन मत में ऋषि-मुनियों के लिए सबसे अच्छी बात खाना-पीना छोड़कर मौत को गले-लगाने को समझा गया, मगर इस्लाम में सभी के लिए आत्महत्या को अवैध क़रार दिया गया। सिख मत में सर व दाढ़ी के बाल न काटने को कहा गया, मगर बौद्ध मत में सर व दाढ़ी के बाल साफ़ करने को पसंद किया गया।

सच्चाई यह है कि आज सभी धर्मों को दो क़िस्मों में बाँटा जा सकता है। सुरक्षित धर्म (Preserved Religion) और असुरक्षित धर्म (Non-Preserved Religion)।

सुरक्षित धर्म वह है, जिसमें खुदा का पैग़ाम, आज भी उसी रूप में मौजूद हो, जिस रूप में उतरा। असुरक्षित धर्म वह है, जिसमें खुदा के पैग़ाम को बदल दिया गया, या भुला दिया गया। आज दुनिया में सिर्फ़ इस्लाम ही सुरक्षित धर्म है, जिसमें खुदा का पैग़ाम उसी ज़बान (भाषा) में और उसी तरह मौजूद है, जिस तरह आज से चौदह सौ पचास साल पहले उतरा था।

खुदा ने इनसानों को, मरने से पहले और मरने के बाद वाली जिन्दगी में कामयाब होने के लिए, एक ही धर्म दिया था। पहले पैग़म्बर (Messenger/ Prophet) हज़रत आदम (अलैहि०) ने उसी धर्म की शिक्षा दी (खुदा एक है, दुनिया परीक्षा-स्थल है, मरने के बाद इस दुनिया में किए गए हर अच्छे या बुरे अमल का बदला मिलेगा)। उनके मरने के बाद लोगों ने उसको बदल दिया, तब ज़रूरत हुई कि दूसरा पैग़म्बर आए और उसी शिक्षा को विशुद्ध रूप में प्रस्तुत करे।

पुराने ज़माने में आने-जाने और बात करने के साधन (Means of Transportation & Communication) बहुत कम थे। इसलिए एक इलाक़े के लिए, एक पैग़म्बर आए और दूसरे इलाक़े के लिए दूसरे पैग़म्बर। यह सिलसिला चलता रहा, यहाँ तक कि अन्तिम ईशदूत (Final Messenger)

हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) आए। और उन्होंने भी उसी धर्म की शिक्षा दी, जो उनसे पहले के सभी पैग़म्बर दे चुके थे।

सभी पैग़म्बरों ने धर्म की जो शिक्षा दी, वह मूलतः एक ही शिक्षा थी। लेकिन, हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) और दूसरे सभी पैग़म्बरों के पैग़ाम में जो अन्तर रहा तो वह यह रहा कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) के पैग़ाम की सुरक्षा की ज़िम्मेदारी ख़ुदा ने ख़ुद अपने ज़िम्मे ले ली, जबकि पिछले नबियों पर उतारे गए पैग़ामों की ज़िम्मेदारी ख़ुदा ने नहीं ली थी। पिछले पैग़ामों की सुरक्षा की ज़िम्मेदारी ख़ुद इनसानों पर थी, मगर वे उनकी रक्षा करने के बजाए भ्रष्ट कर डालते रहे। सभी नबियों के पैग़ाम एक ही थे। इसी लिए सभी के पैग़ामों को समान रूप से मानने का एलान इस प्रकार कराया गया है—

> "कहो! हम तो अल्लाह को मानते हैं और उस शिक्षा को मानते हैं जो हम पर उतारी गई है, और उन शिक्षाओं को भी मानते हैं जो इबराहीम, इसमाईल, इसहाक़ और याक़ूब और उनकी संतान पर उतरी थी, और उन आदेशों पर भी ईमान रखते हैं जो मूसा और ईसा और दूसरे नबियों को उनके रब की ओर से दिए गए। हम उनके बीच अन्तर नहीं करते और हम अल्लाह के आज्ञाकारी (मुस्लिम) हैं।" (क़ुरआन, 3:84)

सभी पैग़म्बरों की शिक्षा का मूलाधार तौहीद यानी एकेश्वरवाद था। फिर इनसान की बुद्धि इस बात को मानती है कि ख़ुदा है और एक है। क्योंकि एक से ज़्यादा ख़ुदा अगर होते, तो ये नतीजे निकलते कि अलग-अलग ख़ुदा अपनी मर्ज़ी का काम करना चाहते, जिससे टकराव होता और उनमें झगड़ा हो जाता। लड़ाई में एक ख़ुदा दूसरे को हरा देता, तब हारनेवाला ख़ुदा नहीं कहलाता, सिर्फ़ जीतनेवाला ही सच्चा ख़ुदा कहलाता।

अलग-अलग ख़ुदा हमेशा एक ही काम करते, ऐसा नहीं होता, बल्कि कोई एक काम करता, कोई दूसरा। सभी ख़ुदाओं के विभिन्न काम होते। कोई हवा का ख़ुदा होता, कोई आग का, कोई पानी का। एक काम को पूरा करने के लिए कई ख़ुदाओं की ज़रूरत पड़ती। जैसे खाना पकाने के लिए इनसान को आग के ख़ुदा, पानी के ख़ुदा, हवा के ख़ुदा, लकड़ी के ख़ुदा, ज़मीन के ख़ुदा की एक साथ आवश्यकता पड़ती और सब ख़ुदाओं को एक साथ राज़ी

रखना पड़ता, क्योंकि अगर एक भी ख़ुदा नाराज़ हो जाता तो काम बिगड़ जाता।

इनसान के एक काम से अगर सब राज़ी रहते तो दूसरे काम से नाराज़ हो जाते। फिर कौन किस बात से राज़ी होगा और किस बात से नाराज़ यह जानना भी इनसान के लिए ज़रूरी होता। एक बात से एक ख़ुदा राज़ी होता तो उसी बात से दूसरा ख़ुदा नाराज़ हो जाता, जैसे सजदा करने से एक राज़ी होता तो दूसरा नाराज़। एक वक़्त में एक ख़ुदा चाहता कि खड़े होकर उसको इज़्ज़त दी जाए तो उसी वक़्त दूसरा ख़ुदा चाहता कि लेट कर उसे इज़्ज़त दी जाए। इस तरह इनसान की पूरी ज़िन्दगी उन्हें ख़ुश करने की कोशिश में ही गुज़र जाती, मगर वे सब फिर भी ख़ुश होते। और जैसे ही उनमें से कोई भी नाराज़ होता इनसान को मार देता और इनसान को जीवित रहने का मौक़ा ही नहीं मिलता। इसके अलावा हर ख़ुदा दूसरे ख़ुदा के कामों और ज़िम्मेदारियों को कभी जानता या कभी नहीं जानता। अगर नहीं जानता तो यह भी उसका अधूरापन होता।

क्या इन परिस्थितियों में इनसान व कायनात का चलते रहना सम्भव होता? क्या ख़ुदा को अधूरे काम करने वाला होना चाहिए? क्या ख़ुदा को सभी चीज़ों व बातों का इल्म व ज्ञान न रखने वाला होना चाहिए? क्या हर चीज़ पर ख़ुदा का क़ाबू न होना चाहिए? बहुदेववादी बुद्धि को विचार करना चाहिए।

एक से अधिक ख़ुदा होते तो कोई इनसान का एक हिस्सा बनाता, कोई दूसरा, कोई कायनात का एक हिस्सा बनाता, कोई दूसरा और सभी चीज़ें अलग-अलग ख़ुदाओं के हुक्म को मानतीं, जिसने उन्हें बनाया होता। इस तरह इनसान व कायनात में बिखराव व टकराव आ जाता। मगर हम देखते हैं कि इनसान के सभी हिस्से सिर्फ़ दिमाग़ के आदेश को मानते हैं और पूरी कायनात भी सन्तुलन के साथ चल रही है।

कुछ लोग ज़बान से कहते हैं कि वे एक ख़ुदा को मानते हैं, मगर अमल में बहुत सारे ख़ुदाओं के सामने झुकते हैं और सभी को मानते हैं। जब इनसान की बात और काम में अन्तर हो तो उसके काम को ही उसका सच माना जाता है।

हिन्दू धर्म में ख़ुदा की धारणा

इस्लाम केवल और केवल एक एवं अनादि ख़ुदा के होने को बताता है। हिन्दू मत में भी नज़र न आनेवाले, सबसे अलग, केवल एक ख़ुदा को मानने की बात कही गई है और इस्लाम की तरह हिन्दू मत के मूल-ग्रन्थ वेद भी केवल एक ख़ुदा की उपासना की बात करते हैं। उदाहरणतः

- वह सिर्फ़ एक है, किसी दूसरे के बिना। (छान्दोग्योपनिषद्, 6:2:1)
- ख़ुदा सिर्फ़ एक ही है, कोई दूसरा नहीं, बिल्कुल नहीं, बिल्कुल नहीं, किञ्चित्मात्र भी नहीं। (ब्रह्मसूत्रभाष्य शंकराचार्य)
- बेशक तू ख़ुदा महान् है। (अथर्व., 20:58:3)
- न ही उसके माँ-बाप हैं और न ही कोई ख़ुदा। (श्वेताश्वतरोपरिषद्, 6:2)
- उसकी कोई प्रतिमा नहीं। (श्वेताश्वतरोपरिषद्, 4:19)
- उसका कोई शरीर नहीं है और वह विशुद्ध है। (यजुर्वेद, 40:8)
- उसकी कोई उपमा नहीं। (यजुर्वेद, 32:3)
- उसका रूप नज़र नहीं आता, कोई उसे आँखों से नहीं देख सकता। जो उसे दिल व दिमाग़ से देखते हैं वह उनके दिल में रहकर उन्हें अमर बना देता है। (श्वेताश्वतरो पनिषद्, 4:20)
- ऐ दोस्तो, उसके सिवा किसी की इबादत न करो, केवल वही एक ख़ुदा है। (ऋग्वेद, 8:1:1)
- जो कुदरती चीज़ों (हवा, पानी, चाँद, सूरज, आग, पेड़ आदि) की पूजा करेंगे, अन्धेरे में दाख़िल होंगे, जो सम्भूती (बनाई हुई चीज़ों जैसे बुत इत्यादि) की पूजा करेंगे वे अंधेरों की और ज़्यादा गहराइयों में डूब जाएँगे। (यजुर्वेद, 40:9)

इस्लाम में ख़ुदा की धारणा

"कहो : वह अल्लाह यकता है, अल्लाह निरपेक्ष (और सर्वाधार) है, न वह जनिता है और न जन्य और न कोई उसका समकक्ष है।"
(क़ुरआन, 112:1-4)

"यदि इन दोनों (आकाश व धरती) में अल्लाह के सिवा दूसरे

इष्ट-पूज्य भी होते तो दोनों की व्यवस्था बिगड़ जाती।"

(क़ुरआन, 21:22)

"अल्लाह ने अपना कोई बेटा नहीं बनाया और न उसके साथ कोई अन्य पूज्य-प्रभु है। ऐसा होता तो प्रत्येक पूज्य प्रभु अपनी सृष्टि को लेकर अलग हो जाता। और उनमें से एक-दूसरे पर चढ़ाई कर देता।" (क़ुरआन, 23:91)

"उस (अल्लाह) जैसी कोई चीज़ नहीं।" (क़ुरआन, 42:11)

"वही अल्लाह (जिसके उपर्युक्त गुण हैं) तुम्हारा रब; उसके सिवा कोई पूज्य नहीं, हर चीज़ का स्रष्टा है, अतः तुम उसी की बन्दगी करो। वही हर चीज़ का ज़िम्मेदार है। निगाहें उसे नहीं पा सकती, बल्कि वही निगाहों को पा लेता है।" (क़ुरआन, 6:102-103)

गौतम बुद्ध के माननेवाले बौद्ध, महावीर जैन के माननेवाले जैनी, यहूदी क़बीले से सम्बन्ध रखनेवाले यहूदी, दरया-ए-सिन्ध के आसपास रहनेवाले सिन्धू (जो बाद में हिन्दू बन गया) कहलाते हैं। लेकिन मुहम्मद (सल्ल॰) के माननेवाले मुहम्मडन नहीं कहलाते, क्योंकि इस्लाम किसी इनसान का बनाया धर्म नहीं है बल्कि स्वयं स्रष्टा का दिया हुआ है।

इस्लाम अरबी भाषा के शब्द 'सलम' से बना है, जिसका मतलब है 'अमन' (Peace)। और यह शब्द 'सिल्म' से भी बना है, जिसका अर्थ है "अपनी मर्ज़ी को अल्लाह के हवाले करना।" इस तरह 'इस्लाम' की परिभाषा होती है "अपनी मर्ज़ी अल्लाह के हवाले करके (इहलोक और परलोक में) अमन व शान्ति प्राप्त करना।"

'इस्लाम' का नाम स्वयं ख़ुदा का दिया हुआ है। यह सभी इनसानों के लिए उनके स्रष्टा का दिया गया धर्म है। यह ख़ुदा का इनसानों के लिए मार्गदर्शन है और ज़िन्दगी गुज़ारने का एक तरीक़ा (जीवन-पद्धति) है। ख़ुदा ने दुनिया की हर क़ौम में, उनकी भाषा में नबी भेजे। सभी ने इसी एक धर्म की तरफ़ लोगों को बुलाया। इस्लाम के नाम से ही इसकी व्यापकता व सम्पूर्णता (Universality) का पता चलता है। दुनिया में जब कभी जिस किसी ने ख़ुदा का आज्ञापालन या ख़ुदा के बताए गए तरीक़े के अनुसार काम किया वह इस्लाम ही था और है। ख़ुदा का बताया गया तरीक़ा वही है जो हज़रत

आदम (अलैहि॰) से लेकर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) तक सभी नबियों ने बताया।

इस्लाम सारी कायनात का धर्म है क्योंकि कायनात (यूनिवर्स) की हरेक चीज़ ख़ुदा का आज्ञापालन कर रही है। इनसान भी ख़ुदा का आज्ञापालन कर रहा है, मगर यह आज्ञापालन मजबूरी में है। जैसे इनसान पानी पर चल नहीं सकता, हवा में उड़ नहीं सकता, आँख से बोल नहीं सकता। ख़ुदा इनसान से यह चाहता है कि ज़िन्दगी के उस हिस्से में जहाँ उसे आज़ादी प्राप्त है (जैसे झूठ भी बोल सकता है और सच भी, धोखा भी दे सकता है और मदद भी कर सकता है, ईमानदार भी हो सकता है और बेईमान भी), वह अपनी मर्ज़ी से ख़ुदा का आज्ञापालन करे। इस तरह इनसानी ज़िन्दगी में ख़ुदा का सम्पूर्ण आज्ञापालन ही इस्लाम कहलाता है।

इस्लाम को समझने के दो रास्ते हैं। एक, मुसलमानों के ज़रीए, अर्थात् यह देखा जाए कि इस्लाम के माननेवाले क्या कर रहे हैं और फिर उसी को इस्लाम समझा जाए। दूसरे, इस्लाम के बुनियादी स्रोत 'क़ुरआन' (और उसकी व्याख्या के ग्रन्थ हदीस) के द्वारा। आज, जब हम पहले चैनल से इस्लाम को समझने की कोशिश करते हैं, तब इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि इस्लाम को बदलो, मगर जब हम दूसरे चैनल से इस्लाम को समझने की कोशिश करते हैं, तब हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि मुसलमानों को बदलो। आजकल ज़्यादातर लोग पहले तरीक़े से इस्लाम को समझने की कोशिश करते हैं जबकि सही दूसरा तरीक़ा है, अर्थात् क़ुरआन के ज़रीए इस्लाम को समझना और इनसान को बदलना।

हमें याद रखना चाहिए कि धर्म इनसान के लिए उसके बनानेवाले का मार्गदर्शन है। स्रष्टा ने इनसान को आज़ादी दी है, चाहे तो धर्म को पूरा माने या अधूरा माने या बिल्कुल न माने। इसलिए जानना चाहिए कि धर्म और उसके माननेवाले दो अलग-अलग चीज़ें हैं। इस्लाम का मूल ग्रन्थ 'क़ुरआन' है और ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) उसके मॉडल हैं, जो इस किताब का व्यावहारिक प्रदर्शन हैं। बाक़ी सभी लोग टीचर हो सकते हैं, किसी से कम और किसी से ज़्यादा सीखा जा सकता है।

क़ुरआन व सही हदीस के अलावा सबकी बातें राएँ, फ़त्वे और फ़ैसले सब

रिसर्च हैं। जिनसे Question भी किया जा सकता है और जिन्हें Challenge और Change भी कर सकते हैं।

मुसलमान होना (Muslimhood) ख़ुद को नबी से बदल लेने की चीज़ है। एक व्यक्ति जब इस्लाम में दाख़िल होता है तो उसे आस्था : एकेश्वरवाद, परलोकवाद और ईशदूतत्ववाद को मानना पड़ता है। इसी के साथ इबादत—नमाज़, रोज़ा, ज़कात, हज—करनी होती है और हक़ : ख़ुद के, माता-पिता के, रिश्तेदारों के, पड़ोसियों के, मुसलमानों व ग़ैर-मुस्लिमों के, जानदार व ग़ैर-जानदार चीज़ों के अदा करने होते हैं।

इस्लाम एक अमल पर आधारित धर्म (Practice-based religion) है न कि नाम पर। कोई व्यक्ति केवल मुस्लिम नाम रखने से मुस्लिम नहीं बन जाता।

> "अब क्या इन लोगों को अल्लाह के दीन (धर्म) के सिवा किसी और दीन की तलब है, हालाँकि आकाशों और धरती में जो कोई भी है स्वेच्छापूर्वक या विवश होकर उसी के आगे झुका हुआ है। और उसी की ओर सबको लौटना है? (क़ुरआन, 3:83)
>
> "जो इस्लाम के अतिरिक्त कोई और दीन (धर्म) तलब करेगा तो उसकी ओर से कुछ भी स्वीकार न किया जाएगा और आख़िरत (मरने के बाद की ज़िन्दगी) में वह घाटा उठानेवालों में से होगा।"
>
> (क़ुरआन, 3:85)

सभी ईमान वालों के लिए उसके स्रष्टा की तरफ़ से मार्गदर्शन "क़ुरआन" का यह दावा कि वह इनसानों के ईश्वर की तरफ़ से है और इसके अतिरिक्त वह कुछ क़बूल नहीं करेगा, इसके माननेवालों (मुसलमानों) को ज़िम्मेदार बनाता है कि वे इस पर अमल करें और इसे सभी इनसानों तक पहुँचाएँ। इसी तरह न माननेवालों पर भी यह ज़िम्मेदारी डालता है कि वे इसे एक बार समझ ज़रूर लें, मानना या न मानना यह उनकी आज़ादी का मामला है।

OO

सर्वधर्म समभाव और इस्लाम धर्म

✍ मुहम्मद इक़बाल मुल्ला

सत्य-धर्म की कसौटी

धर्मों के बारे में जब बातचीत की जाती है तो सामान्यतः यह बात अवश्य कही जाती है कि सभी धर्म सत्य हैं। उनमें से कोई एक धर्म ही सत्य हो और दूसरे धर्म सत्य पर न हों, तो ऐसा सम्भव नहीं है। इसलिए इस सम्बन्ध में यह बात कही जाती है कि धर्मों के नाम अलग-अलग अवश्य हैं, लेकिन सबके रास्ते और लक्ष्य एक ही है। इनमें से किसी भी रास्ते (धर्म) को मनुष्य अपना ले तो वह अवश्य अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेगा। जब समस्त धर्म सत्य हैं, तो किसी एक धर्म को सच्चा ठहराकर दूसरे धर्मों को ग़लत कहना सही नहीं है। जो व्यक्ति जिस धर्म पर चल रहा है, चलता रहे। वह दूसरे व्यक्ति को अपनी पसन्द के धर्म पर चलने का अधिकार दे और उसके धर्म को सच्चा स्वीकार करे और विश्वास रखे कि उसके धर्म के अतिरिक्त दूसरे धर्मों पर चलनेवाले भी मुक्ति के पात्र हैं। इसलिए किसी धर्म के सत्य होने का आग्रह करना, लोगों को उस धर्म को अपनाने का निमंत्रण देना समाज में मतभेद और तनाव पैदा करेगा। इससे राष्ट्रीय एकता छिन्न-भिन्न होगी और लोगों के बीच परस्पर घृणा और दूरी बढ़ेगी।

जो लोग यह दृष्टिकोण रखते हैं उन्होंने धर्म के बारे में गम्भीरता और गहराई से सोच-विचार नहीं किया। यह एक सरसरी राय और सतही सोच का फल है। यद्यपि इस बात से सभी को पूरी तरह सहमत होना चाहिए कि धर्म के नाम पर लड़ना-झगड़ना ग़लत है। धर्मों के माननेवालों के बीच एक दूसरे के लिए आदर-सम्मान, प्रेम, सहानुभूति और भाईचारा होना चाहिए। बहुसांस्कृतिक समाज (Plural Society) में, जहाँ एक से अधिक धर्मों के माननेवाले रहते हों,

धर्म के आधार पर घृणा और तनाव विनाशकारी सिद्ध होता है। यह सत्य है। ऐसा करने का किसी को भी अधिकार प्राप्त नहीं होना चाहिए। मानव-समाज, राष्ट्रीय एकता और अखंडता के लिए भी यह स्थिति ठीक नहीं है।

किन्तु प्रश्न यह उठता है कि उल्लिखित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए क्या इस बात को स्वीकार करना आवश्यक है? चाहे बुद्धि और तर्क, ज्ञान और विवेक के आधार पर कोई व्यक्ति समस्त धर्मों को सही न समझता हो; हर तरह के पूर्वाग्रहों और पक्षपातों से ऊपर उठकर धर्मों के निष्पक्ष तुलनात्मक अध्ययन से कौन-सी सच्चाई हमारे सामने आती है? सच्चाई को स्वीकार करना मामूली बात नहीं है। विभिन्न धर्मों के अनुयायियों के बीच मधुर सम्बन्ध और भाईचारा, राष्ट्रीय एकता और धार्मिक उदारता के लिए निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं—

- हर व्यक्ति को आस्था और धर्म के चुनाव में स्वतन्त्रता प्राप्त हो।
- धर्म के आधार पर किसी के साथ भेदभावपूर्ण रवैया न अपनाया जाए।

अपने धर्म के अतिरिक्त दूसरे धर्मों के प्रति आदर-सम्मान और उदारता का व्यवहार किया जाए।

एक मूल प्रश्न

क्या समस्त धर्म सत्य हैं? या स्रष्टा की ओर से मानव-जाति के दिशा-निर्देश और मार्गदर्शन के लिए एक ही धर्म मानव-जाति की उत्पत्ति-काल से ही ईश्वर की ओर से दिया गया था। यह मूल प्रश्न है, जिसका सम्बन्ध केवल ज्ञान और दर्शन से नहीं, बल्कि इसका सम्बन्ध हर मनुष्य की सांसारिक सफलता और मृत्यु के बाद के जीवन में मुक्ति प्राप्त करने के विषय से भी है। मान लीजिए, ईश्वर के प्रदान किए हुए धर्म को छोड़कर किसी ने अपने मनपसन्द या बाप-दादा के धर्म में पूरा जीवन व्यतीत कर डाला, लेकिन मृत्यु के बाद के जीवन में उसे पता चला कि ईश्वर के आदेश, उसकी मूल शिक्षा और मार्गदर्शन से सांसारिक जीवन में वंचित रहा। अब उसे असफलता और नरक की भयंकर यातना के ख़तरे का सामना है, तो उस समय क्या हो सकता है? यह धर्मों की एकता-भावना से जुड़ी समस्या भी नहीं है। हर मनुष्य को पूर्ण गम्भीरता और चिन्तन-मनन के द्वारा अपनी पसन्द और नापसन्द से ऊपर उठकर ईश्वर की इच्छा और उसके पसन्दीदा रास्ते को खोजने की आवश्यकता

है। मनुष्य सोच-विचार कर सकता है और कोई निर्णय अपने हित में ले सकता है। मार्गदर्शन और सत्यनिष्ठा के लिए चाहे कोई भी बलिदान करना पड़े; सांसारिक भोग-विलास और सुख-चैन से कितना ही वंचित होना पड़े, तो इसका भी निर्णय लिया जा सकता है। लेकिन जब मृत्यु आएगी और उसके बाद दूसरी दुनिया में आँख खुलेगी, तो वहाँ सोच-विचार करने या अपने हित में कोई निर्णय लेने का कोई अवसर ही शेष नहीं रहेगा। यह जीवन एक ही बार मिला है। इसलिए आज सोच-विचार और सही निर्णय लेने का सबसे अच्छा अवसर उसे प्राप्त है। इसे नष्ट करना वास्तव में अपने आपको तबाही में डालना है।

आगे कुछ भी कहने से पहले यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि इस लेख के माध्यम से पाठकों को सोच-विचार की तरफ़ आमन्त्रण देते हुए यह बताना है कि वास्तव में यह धर्मों का जीवन ही मौलिक समस्याओं का मूल आधार है। इसी सम्बन्ध में इस लेख में तुलनात्मक और वस्तुनिष्ठ अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस लेख का उद्देश्य किसी भी धर्म का अपमान और निन्दा करना नहीं है, बल्कि विभिन्न धर्मों की मौलिक अवधारणाओं का निरपेक्ष और तुलनात्मक अध्ययन करके समाज के समक्ष यथार्थ को प्रस्तुत करना है। जो भी धर्म यह दावा करता है कि एकमात्र वही सत्य-धर्म है, तो उसके इस दावे को, उसके दृष्टिकोण को ज्ञान, तर्क और बुद्धि-विवेक के आधार पर निष्पक्ष भाव से दो टूक अन्दाज़ में जाँचना-परखना चाहिए। ईश्वर-प्रदत्त सत्य, यथार्थ, सत्यनिष्ठा और हर व्यक्ति की सफलता और मुक्ति के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि पूर्वाग्रहों, पक्षपातों और पूर्वजों के अन्धानुकरण से मुक्त होकर सत्य को स्वीकार कर लिया जाए। यही ठीक और उचित रवैया हो सकता है। इस लेख का उद्देश्य यह भी नहीं है कि किसी धर्म को उच्चतर या किसी को निम्नतर और तुच्छ सिद्ध किया जाए। बल्कि समस्त धर्मों के प्रति आदर-सम्मान की भावना रखते हुए यह लेख लिखा गया है।

एक विडम्बना

धर्म की परिभाषा देने के लिए कुछ बुद्धिजीवियों और विद्वानों ने निम्नलिखित विचार प्रकट किए हैं, इनमें से कुछ लोग 'सर्वधर्म समभाव' के पक्षधर हैं—

धर्म व्यक्ति का आध्यात्मिक अनुभव और विषय है।

धर्म सत्य की खोज है।

धर्म 'परम सत्य' या 'शाश्वत सत्य' (Ultimate Reality, Eternal Truth and Supreme Reality) को पाने के लिए व्यक्ति के प्रयास का नाम है।

मानो धर्म और ईश्वर की इच्छा का ज्ञान ईश्वर के सन्देश और उसके प्रतिनिधि नबी, रसूल, और पैग़म्बर के बिना हो सकता है। क्या इस सोच से मानव को अपने जीवन के लिए पूर्ण ईश्वरीय मार्गदर्शन और दिशा-निर्देश प्राप्त हो सकता है? क्या इनके द्वारा आस्थाओं, इबादतों, नैतिकता और जीवन-व्यवस्था के नियम बनाए जा सकते हैं? स्पष्ट है कि ख़ुदा को छोड़कर यह सब कोई नहीं कर सकता। यदि मनुष्य प्रयास करेगा भी तो? विभिन्न लोगों के आध्यात्मिक अनुभव और सत्य की खोज के प्रयास निश्चय ही विभिन्न परिणामों और निष्कर्षों पर ख़त्म होंगे। फिर प्रश्न उठेगा कि उनमें सत्य या असत्य कौन-सा है? फिर उनको जाँचने-परखने का आधार क्या होगा? वह कसौटी क्या हो सकती है कि जिसके आधार पर कोई कह सके कि 'हाँ, यह सत्य है और यह असत्य।'

लोगों ने जो यह समझ लिया है कि धर्म केवल व्यक्तिगत जीवन में ख़ुदा की याद, इबादत, पूजा-पाठ और भक्ति के कुछ नियमों और नैतिक शिक्षाओं पर अमल करने का नाम है, यह दुरुस्त नहीं है। इसी सोच के परिणाम आज शेष व्यक्तिगत जीवन के व्यापक दायरे में और पूरे सामाजिक जीवन में, जहाँ ईश्वर और उसकी शिक्षा तथा मार्गदर्शन की सबसे ज़्यादा ज़रूरत है, वहाँ ईश्वर को दूर रखा गया है। जीवन के महत्त्वपूर्ण मामलों में ईश्वरीय अवधारणा, उसके मार्गदर्शन और उसकी शिक्षाओं से विद्रोह करके लोग अपने दृष्टिकोणों और दर्शनों के अन्तर्गत अपना व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन व्यतीत कर रहे हैं। स्पष्ट है, ऐसे संकीर्ण और सीमित धर्म की आवश्यकता ही क्या है?

कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्न

(1) क्या ईश्वर ने ख़ुद कहा है कि मनुष्य धर्म को पाने के लिए आध्यात्मिक साधना करे? अथवा वह सत्य की खोज या धर्म, 'परम सत्य' या 'शाश्वत सत्य' (Ultimate Reality, Eternal Truth या Supreme Reality) को पाने के लिए अनवरत प्रयासरत रहे? क्या इसे ही धर्म और ईश्वर की स्वीकृति

और अनुमोदन (Sanction) प्राप्त होगा और ईश्वर इससे ख़ुश और राज़ी भी होगा? क्या ईश्वर ने मनुष्य को धर्म प्रदान करने से विवशता और सामर्थ्यहीनता प्रकट की है?

(2) धरती पर पहले मनुष्य हज़रत आदम (अलैहि॰) थे। उनकी पत्नी हव्वा (अलैहि॰) भी उनके साथ थीं। क्या हज़रत आदम (अलैहि॰) ने स्वयं धर्म बना लिया था?

(3) धर्म या जीवन-विधान बनाने का उत्तरदायित्व किस पर है? मनुष्य अगर स्वयं धर्म बना लेता है तो फिर ईश्वर की आवश्यकता ही क्या है? क्या मानव-निर्मित धर्म ईश्वर की अवधारणा से रिक्त नहीं हैं? मनुष्य को धर्म बनाने की ज़िम्मेदारी किसने दी है?

(4) क्या ईश्वर ने यह बात बताई है कि उसने बहुत-से धर्म मनुष्य को दिए हैं और ये सब धर्म परस्पर विभिन्नताओं, विरोधाभासों और गम्भीर मतभेदों के बावजूद सभी एक साथ सही हैं? क्या उसने बताया है कि किसी भी धर्म विशेष को यह स्थान ईश्वर के निकट प्राप्त नहीं है कि सिर्फ़ वही सत्य है, शाश्वत सत्य है?

(5) मानव-इतिहास में यह बात अंकित (Recorded) है कि विभिन्न कालों और विभिन्न क़ौमों में ऐसे भले लोग अच्छे और पवित्र चरित्र रखनेवाले गुज़रे हैं, जिन्होंने अपने आपको ईशदूत, नबी या पैग़म्बर बताया; ईश्वर का प्रतिनिधि होने का दावा किया; ईश्वर के विषय में (व्यक्तित्व और गुणों की दृष्टि से) और मरने के बाद के जीवन—स्वर्ग और नरक और मनुष्य की सांसारिक सफलता और कल्याण और पारलौकिक सफलता और मुक्ति के बारे में साफ़-साफ़ और स्पष्ट शिक्षाएँ प्रस्तुत कीं। उन सच्चरित्र लोगों ने यह भी बताया कि वे अपनी ओर से कोई सन्देश और शिक्षाएँ प्रस्तुत नहीं करते, बल्कि जो कुछ प्रस्तुत करते हैं वह सब ईश्वर की ओर से होता है। इन नबियों और पैग़म्बरों ने ईश्वर की शिक्षा और उसके मार्गदर्शन पर सबसे पहले अमल करके अपनी क़ौमों के सामने व्यावहारिक आदर्श प्रस्तुत किया। ये नबी और पैग़म्बर दुनिया की विभिन्न क़ौमों और विभिन्न कालों में निरन्तर आते रहे। आज से एक हज़ार चार सौ पचास साल पहले अरब में हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) पर पैग़म्बरों के आने का क्रम ख़त्म हुआ। इसी लिए हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ईश्वर के अन्तिम दूत हैं।

इन समस्त नबियों और पैग़म्बरों की शिक्षा और मार्गदर्शन में कोई मतभेद और विरोध नहीं पाया जाता। ये सब पूरी सत्यनिष्ठा और निस्स्वार्थ चरित्र के साथ मानव-जाति के कल्याण और उसकी मुक्ति के लिए सतत् प्रयासरत रहे। इन पवित्र और नेक हस्तियों को ईश्वर का सन्देश और मार्गदर्शन जिबरील (अलैहि॰) नामक फ़रिश्ते के द्वारा वह्य (प्रकाशना) के रूप में मिलता रहा।

(6) ईश्वर असीम कृपालु और दयालु है और वह अपनी सर्वोत्तम कृति—मनुष्य—से अनन्त प्रेम करता है। उसने जगत् की अनगिनत चीज़ों को मनुष्य की सेवा में लगा रखा है। वह मनुष्य की छोटी-बड़ी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति अत्यन्त विवेकपूर्ण और तत्त्वदर्शितापूर्ण ढंग से निरन्तर कर रहा है।

हम सब जानते हैं और ख़ूब अच्छी तरह जानते हैं कि जीवन के सम्बन्ध में दिशा-निर्देश और मार्गदर्शन मानव की सबसे बड़ी और मूल आवश्यकता है। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि ईश्वर, जो जगत्-स्रष्टा और जगत्-सखा है, अपनी सृष्टि और सर्वोत्तम कृति अर्थात् मनुष्य के प्रति क्या इतना दयाहीन और निर्दयी हो सकता है कि उसकी मौलिक और अनिवार्य आवश्यकता ही की आपूर्ति नहीं करता? ऐसा नहीं है, बल्कि उसने मानव के मार्गदर्शन और हिदायत का पूर्ण-प्रबन्ध किया है।

विभिन्न धर्मों की परस्पर सामान्य बातें

धर्मों के बीच परस्पर बड़े गम्भीर मतभेद, विरोधाभास और अन्तर पाए जाते हैं, जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इसके बावजूद विभिन्न धर्मों में ईश्वर की अवधारणा, नैतिक मूल्य और कुछ अन्य दृष्टिकोणों से समानता भी पाई जाती है। इसी समानता को सामने रखकर सामान्यतः यह धारणा बना ली जाती है कि सभी धर्म सत्य हैं। इस महत्त्वपूर्ण पहलू पर चिन्तन-मनन करने की आवश्यकता है। यह सही है कि सैद्धान्तिक रूप से विभिन्न धर्मों में ईश्वर की अवधारणा एक समान नज़र आती है, परन्तु व्यावहारिक रूप से उनमें बहुत अधिक मतभेद, विरोधाभास और अन्तर पाया जाता है। फलस्वरूप इन धर्मों के बीच की सैद्धान्तिक समानता का पुल धराशायी होकर रह जाता है और व्यवहारतः ये धर्म एक-दूसरे के पूर्णतः प्रतिकूल और बहुधा विरोधी बन जाते हैं।

इसी प्रकार नैतिक शिक्षाएँ और कुछ दूसरे मूल्य भी विभिन्न धर्मों में उभयनिष्ठ हैं। यद्यपि नैतिकता जीवन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय है, फिर भी यह अंश है, जो सम्पूर्ण का स्थान नहीं ले सकती। साझा नैतिक शिक्षाओं और कुछ मूल्यों के बारे में भी स्थिति यह है कि गहराई और विस्तार में जाने के बाद बड़े विभेद और टकराव दृष्टिगोचर होते हैं।

धर्मों में शिक्षाओं की उभयनिष्ठता या परस्पर समान बातें वास्तव में इस महत्त्वपूर्ण सच्चाई का पता देती हैं कि मानव-जाति के उत्पत्ति-काल में धर्म एक ही था। कालान्तर में कुछ स्वार्थी तत्वों ने अपना स्वार्थ साधने के लिए उसी एक धर्म से अनेकानेक नवीन धर्मों का निर्माण कर लिया।

मानव-जाति का पहला धर्म

हम कैसे सोच सकते हैं कि मानव-जाति के आरम्भ में कोई धर्म नहीं था या बहुत-से धर्म थे। जिस ईश्वर ने मनुष्य और समस्त सृष्टि को पैदा किया, जिसने पक्षी को उड़ना और मछली को तैरना सिखाया, क्या उसने मनुष्य के लिए जीवन का कोई लक्ष्य निर्धारित नहीं किया और उसे अपनी मर्ज़ी के अनुसार अपने मनपसन्दीदा रास्ते पर चलने का मार्ग नहीं दिखाया। दुनिया की हर चीज़ मनुष्य के लिए है और मनुष्य ईश्वर की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और मूल्यवान रचना है। क्या मनुष्य पक्षी और मछली से भी गया-गुज़रा है कि ईश्वर ने उसे जीवन के लिए मार्गदर्शन प्रदान नहीं किया, बल्कि उसे भटकने के लिए छोड़ दिया?

मनुष्य इतनी बुद्धि तो रखता ही है कि अगर वह कोई मशीन बनाता है, तो उसकी प्रयोग-विधि और निर्देशों पर आधारित पुस्तिका (Manual) अवश्य ही जारी करता है। क्या ईश्वर ने मनुष्य को बना तो ज़रूर दिया, लेकिन उसे जीवन के सम्बन्ध में निर्देश-पुस्तिका (Manual) नहीं दी?

यही निर्देशिका मानव-जाति का पहला धर्म था, जिसका निर्माण किसी मनुष्य ने नहीं, बल्कि स्वयं जगत्-स्रष्टा ईश्वर ने किया, जिसमें उस सर्वशक्तिमान शाश्वत ईश्वर ने समस्त मनुष्यों के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक—जीवन के हर क्षेत्र के सन्तुलित विकास के लिए अपनी निर्देश-पुस्तिका में सर्वोत्तम व्यवस्था की, जिसके आधार पर मनुष्य स्वयं अपना, अपने परिवार, समाज, देश और दुनिया का सुधार कर सकता था। इसके अनुसार जीवन

व्यतीत करके मनुष्य अपने स्रष्टा को प्रसन्न कर सकता था अपने दोनों लोकों (लोक-परलोक) को सजा-सँवार सकता था। वह सांसारिक कल्याण और सफलता के साथ-साथ पारलौकिक सफलता और मुक्ति प्राप्त करने का रास्ता पा सकता था। इस प्रकार ईश्वर ने सृष्टि के आरम्भ से ही मानव-जाति को सम्पूर्ण जीवन के लिए सर्वोत्तम दिशा-निर्देश और मार्गदर्शन की सर्वांगपूर्ण व्यवस्था प्रदान की।

इस धर्म में एक ओर जहाँ व्यक्ति और समाज के लिए न्याय और इनसाफ़, शान्ति और सुरक्षा की गारंटी दी गई, वहीं दूसरी ओर अत्याचार, अन्याय और हर प्रकार के शोषण, बिगाड़ और विकृति रहित विशुद्ध जीवन की शिक्षाएँ प्रदान की गई थीं। यह धर्म स्रष्टा के प्रति बन्दे के पूर्ण समर्पण की व्यवस्था थी।

कुछ मौलिक धारणाएँ और विभिन्न धर्म

अब हम कुछ मौलिक धारणाओं के बारे में विभिन्न धर्मों की शिक्षाओं पर विचार करेंगे; ताकि सर्वधर्म समभाव की वास्तविकता का पता चल सके। अगर इन मौलिक धारणाओं के बारे में विभिन्न धर्मों की शिक्षाओं में सहमति या असहमति के तत्त्व पाए जाते हैं तो उनका प्रकार क्या है क्या वे सम्पूर्णता की हैसियत रखते हैं या मात्र आंशिक ही हैं? क्या सारे धर्म निश्चित रूप से सही और सच्चे हैं? अगर इसका उत्तर सकारात्मक है, तो विभिन्न धर्मों की मौलिक धारणाओं में गम्भीर मतभेद और विरोध क्यों पाए जाते हैं? इस पर गम्भीर चिन्तन-मनन की आवश्यकता है कि क्या इसके बाद भी धर्मों के एकत्व को स्वीकार किया जा सकता है? सभी धर्मों की सारी शिक्षाओं का निरीक्षण बहुत विस्तृत हो जाएगा, इसलिए केवल कुछ ही धर्मों के दृष्टिकोण पर सोच-विचार किया जाए। जिन विषयों के सम्बन्ध में हम विभिन्न धर्मों की मौलिक धारणाओं को जानना चाहते हैं वे निम्नलिखित हैं—

- ईश्वर का अस्तित्व और ईश्वर की कल्पना।
- सृष्टि का निर्माण।
- मनुष्य के लिए निर्देश और मार्गदर्शन की व्यवस्था।
- मरने के बाद का जीवन (स्वर्ग और नरक)।

ये विषय केवल ज्ञानपरक दार्शनिक बहस और वार्तालाप के विषय नहीं हैं। इनका गहरा सम्बन्ध व्यक्ति और समाज के व्यावहारिक जीवन, उसकी सफलता और असफलता और इसकी अन्तिम परिणति से है। ईश्वर की धारणा के बारे में विभिन्न धर्मों की शिक्षाओं का साराँश निम्नलिखित है–

हिन्दू धर्म

हिन्दू धर्म में ईश्वर की कल्पना एक हस्ती से शुरू होती है और इसके बाद दो और खुदा भी उसके साथ शामिल होते हैं। इस तरह तीन खुदा बनते हैं। आगे चलकर खुदाओं की कुल संख्या 33 करोड़ बनती है। जहाँ तक वेदों का सम्बन्ध है, तो इनमें एक खुदा के अस्तित्व और उसके गुणों के बारे में उल्लेख मिलता है।

व्यावहारिक दशा हिन्दू भाइयों की ऐसी है कि वे बहुत सारे खुदाओं की पूजा और उपासना करते हैं और उनका यह भी विचार है कि हर चीज़ खुदा है। इसलिए हिन्दू धर्म के हवाले से कहा जाता है कि कण-कण में भगवान है। अर्थात् धरती का हर कण देवता है।

ईसाई धर्म

ईसाई मत में खुदा एक है; फिर खुदा का एक बेटा अर्थात् जीसस (Jessus) है। यह भी खुदा है और फिर एक पवित्र-आत्मा यानी होली घोस्ट (Holy Ghost) भी है। इसको त्रिवाद अथवा त्रीश्वरवाद (Faith of Trinity) कहा गया है। खुदा की इस तीन खुदाओं वाली धारणा में मौलिक आस्था के रूप में यह कल्पना शामिल है कि मुक्ति के लिए जीसस (ईसा मसीह अलैहि॰) पर ईमान लाना, उनको खुदा का बेटा और खुदा मानना और मनुष्य के पापों के प्रायश्चित के रूप में उनका सलीब पर जान देना परम सत्य माना जाता है।

बौद्ध धर्म

बौद्ध मत में खुदा को न तो स्वीकार किया गया है और न ही उसका इनकार किया गया है। बौद्ध मत सम्पूर्ण जगत् के निर्माण और मनुष्य के जन्म में किसी पराभौतिक हस्ती (खुदा) की भूमिका को स्वीकार नहीं करता।

जैन धर्म

जैन मत की दृष्टि से सृष्टि और मनुष्य के सृजन के लिए ईश्वर की आवश्यकता नहीं है। जैन मत ईश्वर का इनकार करता है और तत्त्व तथा जीव

को शाश्वत और चिरस्थायी मानता है। इस प्रकार बौद्ध मत और जैन मत दोनों ईश्वर के अस्तित्व और उसकी अवधारणा से रिक्त हैं।

इस्लाम धर्म

इस्लाम की दृष्टि से सम्पूर्ण सृष्टि और मनुष्य का स्रष्टा सिर्फ़ और सिर्फ़ एक ईश्वर (अल्लाह) है। सृष्टि और मनुष्य का सृजन आप से आप नहीं हुआ और न ही बहुत-से ख़ुदाओं का कोई अस्तित्व है। एकमात्र ख़ुदा हमेशा से है और हमेशा शेष रहनेवाली हस्ती अकेले उसी की है। उसका कोई बेटा, बेटी या पत्नी नहीं है। सारे अच्छे गुणों का मालिक वही है। वह किसी की मदद का मुहताज नहीं; सब उसके मुहताज हैं। इस्लाम में ख़ुदा सिर्फ़ स्रष्टा, स्वामी और पालनहार ही नहीं, बल्कि वही एकमात्र शासक और मार्गदर्शक भी है और क़ानूनों का निर्माता भी। क़ुरआन बताता है कि ईश्वर ने मानवजाति को उसके सम्पूर्ण जीवन के लिए जीवन-विधान, क़ानून और मार्गदर्शन अपने पैग़म्बरों के द्वारा प्रदान किए। क़ुरआन मनुष्य को सचेत करता है कि अल्लाह की निर्धारित की हुई सीमाओं का उल्लंघन कभी न करना और याद रखना कि मरने के बाद तुम्हें उसी के पास जाना है और वह तुमसे तुम्हारे उन कर्मों का हिसाब लेगा, जो तुमने दुनिया में रहते हुए किए थे; इसके बाद तुम्हारे कर्मों के अनुसार वह तुम्हारे लिए स्वर्ग या नरक का फ़ैसला करेगा। उसकी हस्ती, उसके गुणों और अधिकारों में कोई उसका साझीदार नहीं। इस्लामी शिक्षाओं के अनुसार इन सब हैसियतों में किसी को भी ख़ुदा का साझीदार बनाना—चाहे वे फ़रिश्ते हों, बुज़ुर्ग हस्तियाँ हों या कोई दूसरी चीज़—शिर्क (बहुदेववाद) है और इस्लाम की नज़र में शिर्क सबसे बड़ा पाप और अपराध है, जिसे ईश्वर किसी भी दशा में माफ़ नहीं करता।

पवित्र क़ुरआन में है—

> "अल्लाह के यहाँ बस 'शिर्क' (बहुदेववाद) ही की माफ़ी नहीं है। इसके सिवा और सब कुछ माफ़ हो सकता है, जिसे वह माफ़ करना चाहे। जिसने अल्लाह के साथ किसी को साझी ठहराया, वह तो गुमराही में बहुत दूर निकल गया।" (क़ुरआन, 4:116)

गुरु नानक जी सिख मत के संस्थापक हैं। उन्होंने ईश्वर को ब्रह्म, कर्तार (स्रष्टा), अकाल (शाश्वत) और सतनाम (पवित्र नाम) जैसे विभिन्न नामों से

पूजनीय ठहराया है। गुरु नानक जी के बाद सिख-साहित्य में 'वाहे गुरु' का शब्द प्रयुक्त किया गया है। नानक जी ने अल्लाह, ख़ुदा, परवरदिगार और साहब का शब्द भी इस्तेमाल किया है। उन्होंने पौराणिक भक्ति में प्रयुक्त विभिन्न नामों का भी इस्तेमाल किया है। उदाहरण के लिए राम, गोपाल, मुरारी और नारायण।

यहूदी मत में एक ईश्वर की धारणा है। यहूदी क़ौम ख़ुदा के साथ विशेष सम्बन्ध का दावा करती है। उनके धर्मग्रन्थों में यह बात भी लिखी हुई है कि ख़ुदा ने एक बार मशहूर पैग़म्बर हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) से रात भर कुश्ती लड़ी और हार गया।

यहूदी मत में ख़ुदा की धारणा से अधिक इस बात को अधिक महत्त्व दिया गया है कि यहूदी क़ौम ख़ुदा की चहेती और विशिष्ट क़ौम है। यह दुनिया में शासन-प्रशासन और परलोक में स्वर्ग के लिए पैदा की गई है।

(मुताला-ए-मज़ाहिब, पृ॰ 150, 151)

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि विभिन्न धर्मों एवं मतों में ख़ुदा की कल्पना अलग-अलग ही नहीं, बल्कि परस्पर एक-दूसरे से टकरानेवाली और पूर्णतः एक दूसरे के प्रतिकूल भी है। ऐसी स्थिति में क्या एक ही समय में इन सारे धर्मों की धारणाएँ सही हो सकती हैं? स्पष्ट है कि दो परस्पर विरोधी और विपरीत बातों में से कोई एक ही बात सही हो सकती है और होना भी यही चाहिए। अगर हम बुद्धि-विवेक, तर्क और सोच-विचार के आधार पर ख़ुदा की किसी एक धारणा को सही और सच्चा मानें और शेष धारणाओं को सही न मानें, तो इससे अन्य धर्मों का अपमान सिद्ध नहीं होता। यह बात तो सैद्धान्तिक रूप से सही है कि धर्मों का अपमान और उनकी निन्दा न की जाए, लेकिन जो 'सच' है उसे 'सच' तो कहना ही होगा। इसके बजाय अगर हम हठ करते हैं कि सभी धर्मों को सत्य समझा जाए तो इसका स्पष्ट अर्थ यह होगा कि जो वास्तव में ईश्वर नहीं है उसको भी ईश्वर मानें या वास्तविक पूज्य-प्रभु के समान समझें। जो ईश्वर नहीं, उसको सृष्टि का रचयिता और ईश्वर मानना वास्तव में वास्तविक पूज्य-प्रभु का इनकार करना और ईश्वर के साथ खुल्लम-खुल्ला उद्दण्डता और अवज्ञा है। ऐसे आचरण और व्यवहार के कारण मृत्यु के बाद के जीवन में मनुष्य ईश्वर के पुरस्कार का पात्र होगा या दण्ड का भागी? इस प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता है।

सृष्टि का निर्माण और विभिन्न धर्म

हिन्दू धर्म के अनुसार सृष्टि का निर्माण

हिन्दू धर्म में सृष्टि और सृष्टि की उत्पत्ति के बारे में विभिन्न धारणाएँ पाई जाती हैं। उदाहरणार्थ, एक धारणा वेदों में है और अन्य धारणाएँ उपनिषद्, मनुस्मृति और पुराणों में हैं; एक धारणा आर्य समाज की है। ये सभी धारणाएँ एक-दूसरे से बिल्कुल अलग, बल्कि एक-दूसरे के विपरीत भी हैं। कुछ धारणाओं का विवरण यहाँ प्रस्तुत है–

डॉ. ताराचन्द अपनी किताब 'इन्फ्लूअन्स ऑफ़ इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर' में लिखते हैं–

"अनादि विद्यमान हस्ती ने पानी पैदा किया जिसके अन्दर स्वर्णिम अंडा तैरता था। वह उसके अन्दर प्रवेश कर गया और इससे प्रथम रचना ब्रह्मा के रूप में पैदा हुआ, तब ब्रह्मा ने देवताओं, स्वर्ग, पृथ्वी, आकाश, सूरज, चाँद, सृष्टि और मनुष्य को पैदा किया।" ये वैदिक कल्पनाएँ हैं।

(तख़लीक़े-कायनात और धर्म, पृ. 1, 2)

स्वामी दयानन्द जी सृष्टि की रचना के सम्बन्ध में पौराणिक धारणा को अपनी पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश में उद्धृत करते हैं–

> "देखो! देवीभागवत् (पुराण) 'श्री' नामक एक देवी स्त्री जो श्रीपुर की स्वामिनी लिखी है। उसी ने सब जगत् को बनाया और ब्रह्मा, विष्णु, महादेव (शिव) को भी उसी ने रचा। जब उस देवी की इच्छा हुई तब उसने अपना हाथ घिसा। उसके हाथ में एक छाला हुआ। उसमें से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। उससे देवी ने कहा कि तू मुझसे ब्याह कर। ब्रह्मा ने कहा, 'तू मेरी माता है। मैं तुझसे ब्याह नहीं कर सकता।' ऐसा सुनकर माता को क्रोध चढ़ा और लड़के को भस्म कर दिया।" (पृ. 216, एकादशसमुल्लास)
>
> "वैसे ही भागवत् (पुराण) में विष्णु की नाभि से कमल, कमल से ब्रह्मा और ब्रह्मा के दाहिने पग के अंगूठे से स्वायंभव और बाएँ अँगूठे से सत्यरूपा राणी, ललाट से रुद्र और मरीचि आदि से दस पुत्र,

उनसे दश प्रजापति, उनकी तेरह लड़कियों का ब्याह कश्यप से, उनमें से दिति से दैत्य, दनु से दानव, अदिति से आदित्य, विनता से पक्षी, कद्रू से सर्प, सरमा से कुत्ते, स्याल आदि और अन्य स्त्रियों से हाथी, घोड़े, ऊँट, गधा, भैंसा, घास-फूंस और बबूल आदि वृक्ष काँटे सहित उत्पन्न हो गए।" (वही, पृ. 238)

"'शिवपुराण में शिव ने इच्छा की कि मैं सृष्टि करूँ, तो एक नारायण जलाशय को उत्पन्न कर उसकी नाभि से कमल, कमल में से ब्रह्मा उत्पन्न हुआ। उसने देखा कि सब जलमय है। जल की अंजलि उठा देख जल में पटक दी। उससे एक बुदबुदा उठा और बुदबुदे में से एक पुरुष उत्पन्न हुआ। उसने ब्रह्मा से कहा कि हे पुत्र! सृष्टि उत्पन्न कर। ब्रह्मा ने उससे कहा कि मैं तेरा पुत्र नहीं, किन्तु तू मेरा पुत्र है। उनमें विवाद हुआ और दिव्य सहस्र वर्ष-पर्यन्त दोनों जल पर लड़ते रहे।'

यह कथा बहुत विस्तृत है। इसके अन्त में एक मूर्ति निकल आती है और वह कहती है कि 'तुमको मैंने सृष्टि करने के लिए भेजा था, झगड़े में क्यों लगे रहे? ब्रह्मा और विष्णु ने कहा कि हम बिना सामग्री सृष्टि कहाँ से करें। तब महादेव ने अपनी जटा में से भस्म का एक गोला निकाल कर दिया कि जाओ, इसमें से सब सृष्टि बनाओ।'" (वही, पृ. 237)

बौद्ध धर्म के अनुसार सृष्टि का निर्माण

बौद्ध मत में सृष्टि के निर्माण के सम्बन्ध में उल्लेख नहीं मिलता है। एडवर्ड कांजे अपनी पुस्तक 'बुद्धिज़्म एंड इट्स डेवलपमेंट' में लिखते हैं–

"बौद्ध मत की परम्पराएँ स्रष्टा के अस्तित्व का साफ़-साफ़ इन्कार नहीं करतीं। हाँ, वे इस मामले में दिलचस्पी भी नहीं रखतीं कि सृष्टि को किसने पैदा किया है। बौद्ध मत के सृष्टि-सम्बन्धी दृष्टिकोण का उद्देश्य यह है कि जीवों को दुख से मुक्ति मिले और सृष्टि के निर्माण के सम्बन्ध में कल्पना और अनुमान करना समय की बर्बादी ही नहीं, बल्कि ये लोगों के बीच शत्रुता और विवाद का कारण भी बन सकते हैं और इस तरह दुख से मुक्ति के उद्देश्य को

ठंडे बस्ते में डालने का कारण भी हो सकते हैं। इस तरह बौद्ध मत को माननेवाले स्रष्टा के अस्तित्व के मामले में अज्ञेयवाद (Agnosticism) का रवैया अपनाते हैं। अगर सृष्टि के वैयक्तिक स्रष्टा के प्रति पूर्णतः उपेक्षा-भाव है, तो बौद्ध मत अनीश्वरवादी है।" (पृ. 41)

जैन धर्म के अनुसार सृष्टि का निर्माण

जैन मत में सृष्टि के निर्माण की विचारधारा विशुद्ध रूप से भौतिकतावादी है; क्योंकि जैन मत ईश्वर का इन्कार करता है। सृष्टि के निर्माण के बारे में निम्नलिखित उद्धरण पर विचार कीजिए–

"अर्थात् संसार की सारी वस्तुएँ और दुनिया के सारे परिवर्तनों की परिस्थितियाँ चाहे अच्छी हों या बुरी, जीव के राग-द्वेष और पदार्थ के भेद और विशेषता के अनुसार बनती हैं। इसमें परमात्मा की ओर से किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं।"

(जैनधर्म और परमात्मा, पृ. 36)

इसी पुस्तक का एक और उद्धरण निम्नलिखित है–

"वस्तुतः संसार किसका नाम है। जीव जो आवागमन में फँसा हुआ है, जन्म-मरण वरण करता है...कभी नरक में जाता है, कभी जड़ पदार्थों, वनस्पतियों और जानवरों में पैदा होता है; कभी मनुष्य या देवता होता है; कभी दानी होता है, कभी दुखी...इसी का नाम संसार या दुनिया है और यह संसार या दुनिया हर एक जीव अपने लिए स्वयं अपने विचारों और अपनी भावनाओं के अनुरूप बनाता है। इस तरह संसार का कारण स्वयं जीव या आत्मा है।" (पृ. 37)

ईसाई धर्म के अनुसार सृष्टि का निर्माण

ईसाई मत में सृष्टि के निर्माण के सम्बन्ध में बाइबल में निम्नलिखित उद्धरण मिलते हैं–

"आदि में परमेश्वर ने आकाश और पृथ्वी की सृष्टि की। पृथ्वी बेडौल और सुनसान पड़ी थी और गहरे जल के ऊपर अन्धियारा था तथा परमेश्वर का आत्मा जल के ऊपर मंडराता था। जब परमेश्वर ने कहा : उजियाला हो, तो उजियाला हो गया और परमेश्वर ने उजियाले को देखा कि अच्छा है और

परमेश्वर ने उजियाले को अन्धियारे से अलग किया और परमेश्वर ने उजियाले को दिन और अन्धियारे को रात कहा तथा साँझ हुई, फिर भोर हुआ। इस प्रकार पहला दिन हो गया। ...और परमेश्वर ने अपना काम जिसे वह करता था, सातवें दिन समाप्त किया और उसने अपने किए हुए सारे काम से सातवें दिन विश्राम किया।" (बाइबल, पुराना नियम, उत्पत्ति, 1:1-5 और 2:2)

"क्योंकि छः दिन में यहोवा ने आकाश और पृथ्वी और समुद्र और जो कुछ उनमें हैं, सबको बनाया और सातवें दिन विश्राम किया।"

(बाइबल, पुराना नियम, निर्गमन, 20:11)

इस्लाम के अनुसार सृष्टि का निर्माण

अल्लाह सृष्टि का एकमात्र स्रष्टा है। सृष्टि के लिए उसे तत्त्वों और आत्मा इत्यादि की आवश्यकता नहीं पड़ी। उसने सृष्टि का आरम्भ पानी से किया है। सृष्टि के निर्माण के कार्य में उसके साथ कोई शामिल नहीं है। क़ुरआन में कहा गया है कि सृष्टि का निर्माण तो अल्लाह ने किया है। फिर अल्लाह को छोड़कर जिन दूसरों को पूजा जा रहा है, उन्होंने क्या पैदा किया है? एक मक्खी का पैदा करना भी किसी के लिए सम्भव नहीं।

क़ुरआन में है—

> "अल्लाह को छोड़कर जिन पूज्यों को तुम पूजते हो वे सब मिल कर एक मक्खी भी पैदा करना चाहें, तो नहीं कर सकते।"
>
> (क़ुरआन, 22:73)

सृष्टि के निर्माण के काम में ईश्वर को कोई थकावट नहीं हुई, जिसके बाद उसे आराम करने की ज़रूरत महसूस होती। ऐसी सारी कमज़ोरियों से अल्लाह बिलकुल पाक है। ईश्वर हमेशा से है और हमेशा शेष रहनेवाली हस्ती उसी की है।

धर्मों में मनुष्य के दिशा-निर्देश और मार्गदर्शन की व्यवस्था

बौद्ध मत मनुष्य के दिशा-निर्देश और मार्गदर्शन के लिए किसी पराभौतिक साधन की आवश्यकता महसूस नहीं करता। बौद्ध धर्म में नैतिकता के सम्बन्ध में कोई विस्तृत और स्थायी महत्त्व की शिक्षा, मार्गदर्शन और जीवन-व्यवस्था की धारणा नहीं है। संन्यासी का जीवन आदर्श माना गया है। ईश्वर और

उसकी शिक्षा और मार्गदर्शन का इनकार करने के बाद जो शून्य पैदा हुआ, उसे गौतम बुद्ध की पूजा, आराधना और उपासना से भरने का प्रयास किया जाता है।

जैन मत मनुष्य की शिक्षा और उसके मार्गदर्शन के लिए पराभौतिक साधन का इनकार करता है। सैद्धान्तिक रूप से जैन मत ईश्वर के अस्तित्व को भी स्वीकार नहीं करता। तदपि जीवात्मा का अस्तित्व मानता है। अलबत्ता इसमें नैतिक शिक्षाएँ पाई जाती हैं। संन्यासपूर्ण जीवन की महिमा का भी उल्लेख हुआ है। कहने का मतलब यह है कि जैन मत में मानव-जीवन के सम्बन्ध में व्यापक शिक्षा, मार्गदर्शन और जीवन-विधान नहीं मिलता। अर्थात् मानव-जीवन के मार्गदर्शन, सफलता और मुक्ति के लिए ये दोनों धर्म ईश्वर और उसके नबियों, पैग़म्बरों और वह्य (प्रकाशना) की आवश्यकता को स्वीकार नहीं करते। गौतम बुद्ध और महावीर जैन की शिक्षाओं पर चलना और अमल करना ही मुक्ति का साधन समझा गया है। इन दोनों धर्मों के संस्थापकों की ईश्वर की जगह पूजा-अर्चना प्रचलित है।

हिन्दू धर्म का आधार हालाँकि चार वेद हैं; लेकिन वेदों के अलावा गीता, महाभारत, उपनिषद् और पुराण इत्यादि भी महत्त्वपूर्ण माने गए हैं। हिन्दू धर्म में नबी, पैग़म्बर और वह्य की अवधारणा नहीं है, वरन् मनुष्य की शिक्षा-दीक्षा और उसके मार्गदर्शन के लिए अवतारों की धारणा है। इस धारणा के अनुसार, ईश्वर स्वयं मनुष्यों के मार्गदर्शन के लिए मानव-रूप या कोई दूसरा रूप ग्रहण करके धरती पर आता है। भगवान विष्णु के अवतार रामचन्द्र जी, कृष्ण जी, परशुराम इत्यादि स्वीकार किए गए हैं। नरसिंह, कछुआ, सूअर और मछली के रूप में भी उनके अवतार हैं।

अब हम ईश्वरीय धर्म इस्लाम की चर्चा करते हैं। मानव-जीवन के दिशा-निर्देश और मार्गदर्शन के लिए इस्लाम का दृष्टिकोण निम्नलिखित है—

मनुष्य के दिशा-निर्देश और मार्गदर्शन के लिए ईश्वर ने ईशदूतत्व (Prophet-hood) की व्यवस्था की है। इस व्यवस्था में निम्नलिखित बातें शामिल हैं—

1. मनुष्य की शिक्षा-दीक्षा और मार्गदर्शन के लिए ईश्वर ही उपयुक्त हो सकता है; क्योंकि वही इसका स्रष्टा है और इसके बारे में हर तरह का ज्ञान रखता है।

2. मनुष्य की शिक्षा-दीक्षा और मार्गदर्शन के लिए ईश्वर ने जिन पवित्र और सच्चरित्र मनुष्यों को चुना वे नबी और पैग़म्बर (ईशदूत) कहलाए। मनुष्य के लिए व्यावहारिक आदर्श कोई मनुष्य ही हो सकता है। नबी और पैग़म्बर वह्य (प्रकाशना) के द्वारा ईश्वर से सन्देश प्राप्त करते थे। ये ईश्वरीय सन्देश मनुष्यों के मार्गदर्शन और शिक्षा-दीक्षा पर आधारित होते थे। नबियों और पैग़म्बरों की बातें निस्सन्देह प्रामाणिक और अन्तिम होती थीं; क्योंकि वे ईश्वर-प्रदत्त सत्य-ज्ञान के आधार पर इन बातों को प्रस्तुत करते थे। इनमें उनकी किसी कल्पना और अनुमान व ऐन्द्रिक इच्छाओं और सोच-विचार का दख़ल नहीं होता था। इसी लिए उनकी सारी बातें हर आशंका और सन्देह से ऊपर और सत्य और यथार्थ पर आधारित होती थीं। इस आधार पर पैग़म्बरों (ईशदूतों) पर ईमान लाना और उनका आज्ञापालन करना उनकी क़ौमों के लिए अत्यन्त कल्याणकारी होता था। क्योंकि पैग़म्बर (ईशदूत) ईश्वर की ओर से नियुक्त किए जाते थे इसलिए उनका इनकार असल में ख़ुदा का इनकार है।

3. नबी और पैग़म्बर विभिन्न क़ौमों और विभिन्न काल-खण्डों में आते रहे। अन्तिम पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) हुए हैं। हिदायत, सफलता और मुक्ति के लिए हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) पर ईमान लाना ज़रूरी है; क्योंकि पिछले नबियों की शिक्षाओं और उनपर उतारी गई किताबों में इतने फेर-बदल हुए हैं कि उनकी मूल शिक्षाओं का पता लगाना असम्भव है।

आज जब कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) की शिक्षा, जीवन-चरित्र और सन्देश इतिहास के रिकॉर्ड में बिलकुल सुरक्षित है, पिछले नबियों और पैग़म्बरों की शिक्षाओं का सार वे ईश्वर की ओर से सम्पूर्ण मानव-जाति के लिए पेश करते हैं; तो हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) का इनकार करके कोई आदमी भटकने से कैसे बच सकता है?

4. हालाँकि हर आदमी के अन्दर, भलाई-बुराई और पाप-पुण्य का तत्त्व भी रखा गया है। लेकिन यह मनुष्य जैसे अधिकार-सम्पन्न और कुछ स्वतन्त्रता और बुद्धि और चेतना रखनेवाले प्राणी के लिए असम्भव है कि वह स्वयं भलाई-बुराई, पाप-पुण्य में अन्तर कर सके और ख़ुद ही अपना मार्गदर्शन कर सके। इसलिए ईश्वर ने मनुष्य की शिक्षा-दीक्षा और उसके मार्गदर्शन के लिए नबियों और पैग़म्बरों का एक लम्बा सिलसिला चलाया।

धर्मों में मृत्यु के बाद के जीवन की धारणा

हिन्दू धर्म, बौद्ध मत, जैन मत और सिख मत में मृत्यु के बाद के जीवन के लिए आवागमन (Transmigration) की धारणा सामान्य है। हिन्दू धर्म के विचार को निर्धारित करने में यह कठिनाई पेश आती है कि वेदों में आवागमन नहीं है, बल्कि कर्मों की पारलौकिक जीवन में पूछगच्छ, फिर स्वर्ग और नरक की धारणा है। वेदों में परलोक की धारणा मिलती है। स्वर्ग और नरक के चित्रण मिलते हैं। लेकिन पुराणों और अन्य हिन्दू धर्मग्रन्थों में आवागमन का उल्लेख है। इसका मतलब यह है कि मरने के बाद कर्मों के आधार पर मनुष्य पुनः नया जन्म इहलोक में पाएगा।

मनुष्य का यह नया जन्म पुनः मनुष्य, जानवर, कीड़ा-मकोड़ा, घास-फूँस और सब्ज़ी इत्यादि के रूप में हो सकता है। इसकी निर्भरता मनुष्य के कर्म पर है। जन्म और मृत्यु का सिलसिला 84 लाख योनियों (शरीरों) को ग्रहण करने तक चलता रहता है। इसके बाद ही मुक्ति मिलेगी। मुक्ति किस रूप में और किस तरह प्राप्त होगी, इस बारे में भी हिन्दू धर्म का मतैक्य नहीं।

ईसाई धर्म में मृत्यु के बाद के जीवन की धारणा है। सफलता और मुक्ति के लिए सांसारिक जीवन में जीसस को ख़ुदा का बेटा मानकर सलीब पर जीसस के जान देने की धारणा को मानना ज़रूरी है। ईसाई धर्म की मान्यता है कि जीवन में जीवन-विधान की पाबन्दी आवश्यक नहीं। बल्कि इस धारणा के साथ कोई शरीअत (जीवन-विधान) पाई ही नहीं जाती, बल्कि केवल स्वर्ग और नरक की धारणा पाई जाती है।

इस्लाम में मृत्यु के बाद के जीवन के बारे में स्पष्ट शिक्षाएँ मिलती हैं। यह धारणा इस्लाम की तीसरी और मौलिक धारणा कहलाती है अर्थात् परलोक की धारणा। इस धारणा के अनुसार मनुष्य अपने सांसारिक जीवन के लिए अल्लाह के सामने उत्तरदायी और जवाबदेह है। ईमान (एक ईश्वर पर भरोसा) और अच्छे कर्मों के आधार पर इनाम के रूप में स्वर्ग तथा बुरे कर्मों और कुधारणाओं के आधार पर नरक की आग और यातना होगी। कोई सिफ़ारिश या दोस्ती काम नहीं आएगी। ईश्वर का निष्पक्ष न्याय होगा। क़ियामत (महाप्रलय) के बाद सारे मनुष्यों को अल्लाह के सामने हाज़िर होकर उपर्युक्त परिस्थितियों से दो-चार होना पड़ेगा।

क़ुरआन में आया है—

"क़ियामत के दिन वह (अल्लाह) तुम सबको ज़रूर जमा करेगा। यह बिल्कुल एक असन्दिग्ध सच्चाई है। मगर जिन लोगों ने अपने आपको स्वयं तबाही के ख़तरे में डाल लिया है, वे इसे नहीं मानते।" (क़ुरआन, 6:12)

"घाटे में पड़ गए वे लोग जिन्होंने अल्लाह से अपने मिलने को झुठलाया। जब अचानक वह घड़ी आ जाएगी तो यही लोग कहेंगे कि 'अफ़सोस! इस मामले में हमसे कैसी कोताही हुई।' और उनका हाल यह होगा कि वे अपनी पीठों पर अपने पापों का बोझ उठाए हुए होंगे। देखो! कैसा बुरा बोझ है, जो ये उठा रहे हैं। दुनिया की ज़िन्दगी तो एक खेल और एक तमाशा है। वास्तव में आख़िरत (परलोक) ही का घर उन लोगों के लिए बेहतर है, जो डर रखते हैं। फिर क्या तुम लोग बुद्धि से काम न लोगे?" (क़ुरआन, 6:31,32)

मुर्दों को दोबारा ज़िन्दा करने के बारे में क़ुरआन कहता है—

"और उसकी निशानियों में से एक यह है कि तू ज़मीन को देखता है कि सोई पड़ी है; फिर जहाँ हमने पानी बरसाया और वह भीग उठी और लहलहाने लगी; तो जिसने उसको ज़िन्दा किया वही मुर्दों को भी ज़िन्दा करनेवाला है। निश्चय ही उसे हर चीज़ की सामर्थ्य प्राप्त है।" (क़ुरआन, 41:39)

परलोक में क्या होगा? इसके सम्बन्ध में क़ुरआन में विस्तार से प्रकाश डाला गया है। एक जगह कहा गया है—

"और प्रत्येक व्यक्ति को उसकी कमाई का पूरा-पूरा बदला मिलेगा और उसपर कुछ भी ज़ुल्म (अत्याचार) न होगा।" (क़ुरआन, 3:161)

दूसरी जगह है—

"और डरो उस दिन से जब कोई किसी के तनिक काम न आएगा और न किसी की ओर से सिफ़ारिश क़बूल होगी; न किसी को फ़िदया (जुर्माना) लेकर छोड़ा जाएगा और न अपराधियों को कहीं से सहायता मिल सकेगी।" (क़ुरआन, 2:48)

"क़ियामत के दिन तुम्हारी रिश्तेदारियाँ और तुम्हारी औलादें तुम्हारे लिए कुछ भी लाभ पहुँचानेवाली न होंगी। अल्लाह तुम्हारे बीच फ़ैसला करेगा और जो कुछ तुम करते हो, उसको वह देखता है।" (क़ुरआन, 60:3)

"उस दिन आदमी अपने भाई और अपने माँ-बाप और अपनी पत्नी और अपने बच्चों से भागेगा। उस दिन प्रत्येक व्यक्ति पर ऐसा समय आ पड़ेगा कि उसे अपने सिवा किसी और का होश न रहेगा।" (क़ुरआन, 80:34-37)

इस पूरी विवेचना से जो निष्कर्ष सामने आते हैं वे निम्नलिखित हैं–

1. धर्मों की मूल धारणाओं में गम्भीर मतभेद और स्पष्ट अन्तर पाए जाते हैं। वे एकमत नहीं हैं।

2. एक ही समय में ये सब धारणाएँ सही और सत्य नहीं हो सकतीं। इनमें से जो भी सही और सच्ची हैं, उनकी खोज ज़रूरी है।

3. क्योंकि धारणा का संसार में मनुष्य के व्यावहारिक जीवन, उसके रवैये, ख़ुदा और बन्दों के अधिकारों और हक़ों की अदायगी के सन्दर्भ में बहुत महत्त्व है, यही कारण है कि लोग यथार्थ और सही धारणा न अपनाने के कारण उपर्युक्त सन्दर्भों में नाकाम और असफल दिखाई देते हैं।

4. दृष्टिकोण के सम्बन्ध में भी सम्प्रदायों के मध्य मतभेद और स्पष्ट अन्तर पाए जाते हैं। यथा–मनुष्य के जीवन के उद्देश्य का दृष्टिकोण, इबादत और उपासना के ढंग और मानव-समानता का दृष्टिकोण इत्यादि।

उपर्युक्त अध्ययन के बाद कुछ बड़े और महत्त्वपूर्ण धर्मों का दृष्टिकोण हमारे समक्ष है। कोई यह नहीं कह सकता कि इनमें से किसी को भी अपनाना सही और सत्यानुकूल होगा और इनमें से हर धारणा के अनुसार मनुष्य व्यावहारिक जीवन बसर करके ख़ुदा को राज़ी और ख़ुश कर सकता है। महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि इन विभिन्न धारणाओं में से कौन-सी धारणा ईश-प्रदत्त है, जिसे अपनाने से ईश्वर बन्दों से राज़ी और ख़ुश होगा? इस तथ्य की खोज करना और अभिलाषा रखना ज्ञान और तर्क, बुद्धि और विवेक के आधार पर हर आदमी का कर्तव्य और उत्तरदायित्व है।

क़ुरआन का मार्गदर्शन

सारे धर्मों के सत्य और सही होने या न होने के बारे में क़ुरआन का मार्गदर्शन बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसपर सोच-विचार करने की ज़रूरत है।

क़ुरआन आज से लगभग 1450 साल पहले हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) पर उतारा गया। हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) क़ुरआन के लेखक नहीं हैं। क़ुरआन शुरू से लेकर अन्त तक बताता है कि इसे अल्लाह ने अवतरित किया है। क़ुरआन में यह चैलेंज भी दिया गया है कि जो लोग इसे अल्लाह की वाणी और किताब नहीं मानते, वे इस तरह की एक छोटी-सी सूरा (अध्याय) बनाकर दिखाएँ।

क़ुरआन ने एक विशेष बात यह बताई है कि पिछली किताबें, जो अल्लाह की ओर से अवतरित की गई थीं, उनमें से एक भी सुरक्षित नहीं रही। उन किताबों को माननेवालों ने अपना स्वार्थ साधने के लिए ईश्वर की वाणी में मनचाहे फेर-बदल और जोड़-घटाव कर दिए। अब उनकी मूल शिक्षाएँ मालूम नहीं हो सकतीं। लेकिन क़ुरआन ही एकमात्र ऐसी किताब है, जो न सिर्फ़ अपने मूल रूप में सुरक्षित है, बल्कि पिछली किताबों की मूल शिक्षाओं का सार है और उनकी शुद्धता को परखने की एकमात्र कसौटी है। चूँकि पिछले ईश्वरीय ग्रन्थ अपनी मूल शिक्षाओं और स्वरूप में विद्यमान नहीं हैं, इसलिए उनसे विशुद्ध शिक्षा और मार्गदर्शन प्राप्त नहीं किया जा सकता। ऐसे में अब क़ुरआन ही मार्गदर्शन और विशुद्ध ईश्वरीय शिक्षा प्रदान करनेवाली एकमात्र किताब है।

सत्य और यथार्थ धारणा और धर्म की खोज के विषय में मानवजाति का क़ुरआन क्या मार्गदर्शन करता है, इस हेतु क़ुरआन की निम्नलिखित आयतों पर सोच-विचार करने की ज़रूरत है।

1. "दीन (धर्म) तो अल्लाह की दृष्टि में सिर्फ़ इस्लाम ही है।"
(क़ुरआन, 3:19)

2. "अब क्या ये लोग अल्लाह के आज्ञापालन के तरीक़े (इस्लाम) को छोड़कर कोई और तरीक़ा चाहते हैं? हालाँकि आसमानों और ज़मीन की सारी चीज़ें चाहे-अनचाहे अल्लाह की आज्ञाकारी (मुस्लिम) हैं और उसी की तरफ़ सबको पलटना है।"
(क़ुरआन, 3:83)

“इस्लाम के सिवा जो व्यक्ति कोई और तरीक़ा अपनाना चाहे उसका वह तरीक़ा हरगिज़ स्वीकार न किया जाएगा और परलोक में वह असफल रहेगा।” (क़ुरआन, 3:85)

“आज मैंने तुम्हारे दीन (धर्म) को तुम्हारे लिए पूर्ण कर दिया है और तुमपर अपनी नेमत (अनुग्रह) पूरी कर दी है और तुम्हारे लिए इस्लाम को तुम्हारे धर्म के रूप में स्वीकार कर लिया है।” (क़ुरआन, 5:3)

क़ुरआन और हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) के कथनों से मालूम होता है कि बन्दों के लिए इस्लाम अल्लाह का प्रदान किया हुआ दीन (धर्म) है। इसके संस्थापक कोई व्यक्ति, पैग़म्बर (ईशदूत), या नबी नहीं हैं। हज़रत आदम (अलैहि॰) और उनकी सन्तान को अल्लाह ने पहले दिन से ही यह धर्म प्रदान कर दिया था। इस सारग्राही, पूर्ण और फ़ाइनल रूप को उसने अपने प्रिय बन्दे हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) को प्रदान किया। अल्लाह का पूर्ण आज्ञापालन और उसकी बन्दगी करनेवाले को मुस्लिम कहते हैं। इस्लाम कोई जातीय और राष्ट्रीय धर्म नहीं है, बल्कि यह तो सम्पूर्ण संसार और सम्पूर्ण मानव-जाति के लिए सार्वकालिक, शाश्वत और सर्वहितकारी धर्म है।

इस्लाम के विपरीत जो भी जीवन-शैली है, वह सत्य के इनकार और बहुदेववाद पर आधारित है। शिर्क अर्थात् बहुदेववाद के सन्दर्भ में क़ुरआन की आयतों के हवाले आ चुके हैं। अब कुफ़्र अर्थात् सत्य के इनकार के बारे में क़ुरआन की आयतों पर सोच-विचार कीजिए—

“विश्वास रखो, जिन लोगों ने कुफ़्र किया और कुफ़्र ही की दशा में मरे, उनमें से कोई अगर अपने को सज़ा से बचाने के लिए धरती भरकर भी सोना बदले में दे, तो उसे स्वीकार न किया जाएगा। ऐसे लोगों के लिए दर्दनाक सज़ा तैयार है और वे अपना कोई सहायक न पाएँगे।” (क़ुरआन, 3:91)

“जिन लोगों ने कुफ़्र (हक़ के इनकार) का रास्ता अपनाया है, उनके लिए सांसारिक जीवन बड़ा प्रिय और दिलपसन्द बना दिया गया है। ऐसे लोग ईमानवालों की हँसी उड़ाते हैं, मगर क़ियामत के दिन परहेज़गार लोग ही उनके मुक़ाबले में उच्च स्थान पर होंगे। रही

संसार की आजीविका (रोज़ी), तो अल्लाह को अधिकार है जिसे चाहे बेहिसाब प्रदान करे।" (क़ुरआन, 2:212)

निर्णय मनुष्य के हाथ में है

क़ुरआन की दृष्टि में इस्लाम ही मनुष्य के लिए स्वीकार और धारण करने योग्य धर्म है। ख़ुदा ने बहुत सारे धर्म मनुष्यों को नहीं दिए हैं। ख़ुदा ने यह नहीं कहा है कि किसी भी धर्म पर चलो, मैं तुमसे ख़ुश हो जाऊँगा। दुनिया की सफलता, उन्नति, ख़ुशहाली और परलोक की सफलता, मुक्ति और सुख-आनन्द तो उन्हें एक ही धर्म में मिलेगा, जिसे ईश्वर का अनुमोदन (sanction) प्राप्त है। लेकिन किसी भी मनुष्य को उसे अपनाने पर मजबूर नहीं किया जा सकता। लालच या ज़ोर-ज़बरदस्ती से उसे ग्रहण नहीं करवाया जा सकता। इस सन्दर्भ में क़ुरआन के स्पष्ट कथन निम्नलिखित हैं–

"दीन (धर्म) के मामले में कोई ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं है।" (क़ुरआन, 2:256)

"(ऐ पैग़म्बर) आप कह दीजिए कि यह सत्य है तुम्हारे रब की ओर से, अब जिसका जी चाहे मान ले और जिसका जी चाहे इनकार कर दे।" (क़ुरआन, 18:29)

"हमने उसे मार्ग दिखा दिया, चाहे कृतज्ञता दिखानेवाला बने या इनकार करनेवाला।" (क़ुरआन, 76:3)

उपर्युक्त विवेचन से पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि क़ुरआन इस्लाम को ख़ुदा का दीन (धर्म) कहता है, लेकिन इसके स्वीकार करने या इनकार करने का पूरा अधिकार और पूरी स्वतन्त्रता प्रत्येक व्यक्ति को देता है। व्यक्ति के इस अधिकार और स्वतन्त्रता को कोई छीन नहीं सकता।

"शुरू में सब लोग एक ही तरीक़े पर थे। (फिर यह हालत बाक़ी न रही और विभेद प्रकट हुए) तब अल्लाह ने नबी भेजे, जो सीधे मार्ग पर चलने पर ख़ुशख़बरी देनेवाले और टेढ़ी चाल के परिणामों से डरानेवाले थे और उनके साथ सत्य पर आधारित पुस्तक उतारी; ताकि सत्य के विषय में लोगों के बीच जो विभेद उत्पन्न हो गए थे, उनका फ़ैसला करे–(और इन विभेदों के प्रकट होने का कारण यह न था कि शुरू में लोगों को सत्य का ज्ञान कराया ही नहीं गया था,

नहीं) विभेद उन लोगों ने किया, जिन्हें सत्य का ज्ञान दिया जा चुका था; उन्होंने स्पष्ट आदेश पा लेने के बाद केवल इसलिए सत्य को छोड़कर विभिन्न रास्ते निकाले कि वे परस्पर ज़्यादती करना चाहते थे—अतः जिन लोगों ने पैग़म्बरों को माना उन्हें अल्लाह ने अपनी अनुमति से उस सत्य का रास्ता दिखा दिया, जिसमें लोगों ने विभेद किया था। अल्लाह जिसे चाहता है, सीधा मार्ग दिखाता है।"

(क़ुरआन, 2:213)

OO